गगनाञ्चल

वर्ष 26 अंक 1 जनवरी-मार्च, 2003

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् भारत के विदेश मंत्रालय के अधीन एक स्वायत्त संगठन है। भारत व अन्य देशों के मध्य सांस्कृतिक संबंधों एवं पारस्परिक सद्भाव को स्थापित तथा संपुष्ट करने के उद्देश्य से 1950 में परिषद् की स्थापना की गयी थी। भारत तथा दूसरे देशों के मध्य इस सांस्कृतिक संवाद के उद्देश्य से आयोजित अपने प्रकाशन कार्यक्रम में परिषद् अन्य गतिविधियों के अतिरिक्त छह पत्रिकाएं प्रकाशित करती है, जिसमें चार त्रैमासिक पत्रिकाएं एवं दो छमाही पत्रिकाएं हैं। हिंदी (*गगनाञ्चल*), अंग्रेज़ी (*इंडियन होराइजन्स* और अफ्रीका क्वार्टरली), अरबी (*सक़ाफ़त–उल–हिंद*), त्रैमासिक पत्रिकाएँ हैं और स्पेनिश (पपलेस दे *ला इंडिया*), फ्रेंच (*रेकौव अवेक लैद*) छमाही पत्रिकाएँ है। प्रकाशन सामग्री के लिए सपादक '*गगनाञ्चल*' से निम्नलिखित पते पर संपर्क किया जाना चाहिए:

भारतीय सास्कृतिक संबध परिषद्
आज़ाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,
नई दिल्ली–110002

गगनाञ्चल मे प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है, किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुज्ञा दी जा सकती है। अत. प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। *गगनाञ्चल* में व्यक्त किए गए विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद् की नीति को प्रकट नहीं करते।

शुल्क दरें

वार्षिक	त्रैवार्षिक
रु० 100	रु० 250
US$ 40	US$ 100
£ 16	£ 40

उपर्युक्त शुल्क दरों का अग्रिम भुगतान "भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली" को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

प्रकाशक
राकेश कुमार
महानिदेशक,
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्,
नई दिल्ली

अतिथि संपादक
डॉ. सुरेशचन्द्र शुक्ल

प्रबन्ध संपादक
डॉ. मधुप मोहता

कार्यकारी संपादक
अजय कुमार गुप्ता

ISSN : 0971-1430

मुद्रक : सीता फाईन आर्ट्स प्रा० लि०,
ए-22, नारायणा इंडस्ट्रियल एरिया,
फेज़–2, दिल्ली–110028
दूरभाष : 51418880, 25895100, 25896999
ई–मेल : printer@vsnl.com

अध्यक्ष की ओर से

"गगनांचल" के इस अंक के माध्यम से मैं पाठकों, लेखकों एवं पत्रिका से सम्बद्ध सभी को नव वर्ष की शुभकामनाएं देती हूं।

"गगनांचल" भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् द्वारा प्रकाशित ऐसी हिन्दी पत्रिका है जो पिछले 26 वर्षों से देश-विदेश के पाठकों को भारतीय जीवन, संस्कृति एवं दर्शन के विविध रूपों से न केवल परिचय कराती रही है, प्रत्युत् उनमें निहित गहन सौन्दर्य एवं कलात्मक रूपों से अवगत भी कराती रही है। भारतीय साहित्य के विविध आयामों के समन्वित दर्शन इस पत्रिका के माध्यम से किये जा सकते हैं।

हमारा साहित्य हमारे सामाजिक जीवन की जीवंत जिजीविषा तथा सर्जन की अभिव्यक्ति है। जीवन की महान आध्यात्मिक समीक्षा इस देश की ऐसी विरासत है जो हमेशा न केवल अनेक समस्याओं से जूझते हुए विश्व के लिए एक संदेश हो सकती है बल्कि एक मार्ग दर्शन भी—कि किस प्रकार प्रेम, सहयोग और सहिष्णुता के द्वारा एक नये विश्व की कल्पना संभव है।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के अध्यक्ष के रूप में मैं पुनः शुभकामनाएं प्रेषित करती हूं।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि भविष्य में भी यह पत्रिका यथावत् रूप से आपके साथ जुड़ी रहेगी तथा आपका ज्ञानवर्द्धन एवं मनोरंजन करती रहेगी।

(नजमा हेपतुल्ला)
अध्यक्ष

सम्पादक की ओर से

'गगनांचल' का यह अंक नववर्ष की शुभकामनाओं के साथ देश-विदेश के पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। इस अंक में इस बात पर बल दिया गया है कि यह अपनी समन्वित छवि के द्वारा पाठकों को भारतीय जीवन दर्शन, संस्कृति, इतिहास एवं साहित्य का यथोचित अवलोकन एवं परिदर्शन करा सके।
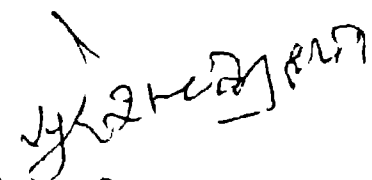
इस पत्रिका के प्रकाशन में भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद् का भी यही उद्देश्य एवं प्रयास रहा है।

इस अंक में भारतीय जीवन और साहित्य के विभिन्न आयामों के संस्पर्श का प्रयास किया गया है। प्रयास की सफलता का आकलन तो पाठकों द्वारा ही संभव है।

साहित्य का आधार तो सहृदय पाठक ही है जो साधारणीकृत अवस्था में उसके रस का आस्वादन करता है।

'गगनांचल' के इस अंक में परम्परा का निर्वाह करते हुए उसे नवीन आयाम प्रदान करने का प्रयास भी किया गया है। आशा है हमारा यह प्रयास सफल और सार्थक होगा। हम अपने लेखकों एवं पाठकों के आभारी हैं कि उन्होंने 'गगनांचल' को सदा ही सहयोग दिया है और भविष्य में भी आशा है कि उनका रचनात्मक सहयोग एवं प्यार यथावत् मिलता रहेगा।

पुनश्च, नववर्ष की मंगल कामनाओं के साथ,

(डॉ. सुरेशचन्द्र शुक्ल)

अनुक्रम

सांस्कृतिक परिदृश्य

भाषा

व्यंग्य

कहानी

कविताएं

चित्रकला

संस्मरण

पुस्तक-समीक्षा

भारतीय मूर्तिशिल्प में बुद्ध प्रतिमाओं का प्रादुर्भाव

डॉ० रामस्वरूप पल्लव

भारतीय बौद्ध मूर्तिकला का प्रादुर्भाव मौर्य सम्राट अशोक के शासन काल (273-232 ई० पू०) से होता है। इनके राज्यकाल से बौद्ध धर्म, कला और संस्कृति को विश्व व्यापी मान्यता मिली और भारत में बौद्ध धर्म जनमानस का लोकधर्म बनकर लोकप्रिय हुआ। इसी कारण सम्राट अशोक का बौद्ध धर्म के प्रति योगदान अत्यन्त सराहनीय है। उसने अपने शासन काल में विशाल साम्राज्य की स्थापना करते हुए दूर-दूर तक सीमाओं का विस्तार किया। मौर्य साम्राज्य पाटलिपुत्र से नियन्त्रित होता था और यहीं से बौद्ध धर्म, राजनीति, आर्थिक शासन-प्रबन्ध एवं सांस्कृतिक-विकास का संचालन होता था। भारतीय इतिहास में कलिंग का युद्ध एक महत्वपूर्ण घटना थी, जिसने सम्राट अशोक पर परिवर्तनकारी प्रभाव डाला। अपने राज्याभिषेक के नवम् वर्ष में उसने कलिंग देश पर चढ़ाई की। इस युद्ध में एक लाख मानवों की भीषण रक्तपात से जनहानि हुई और इससे कहीं अधिक संख्या में हताहत हुए। ऐसे भयानक युद्ध दृश्यों को देखकर अशोक को परिताप हुआ और अपने कलिंग विजय को उसने संताप दायक माना।[1] उसने जीवन भर युद्ध न करने की शपथ ली और बौद्ध धर्म से प्रभावित होकर दीक्षा

ग्रहण की। अशोक अब चंडाशोक से धर्माशोक बन गये और भगवान बुद्ध द्वारा दिखाये गए मार्ग के सच्चे पथिक बन गये।[2]

सम्राट अशोक के शासन काल में हीनयानी संप्रदाय का प्रभाव छाया रहा और इसी प्रभाव के अनुरूप भगवान बुद्ध की प्रतिमा कभी भी रूपायित नहीं की गयी। वह स्वयं हीनयान विचार धारा को मानने वाला शासक था, जिसमें बुद्ध प्रतिमा का निर्माण पूर्णतः वर्जित है। अतः इस काल में मूर्तिरूप में पूजा करने का प्रश्न ही नहीं उठता। बौद्ध धर्म की शिक्षाओं से प्रेरित होकर शिला अभिलेखों को उत्कीर्ण करवाया। अशोक काल में हीनयान संप्रदाय संपूर्ण भारत में इतनी तेजी से फैला कि बौद्ध धर्म में उसके अट्ठारह पंथ बन गये।[3] अपने शासन काल के उत्तरार्ध में बौद्ध धर्म प्रचारक नियुक्त किये और स्वयं भी धार्मिक यात्राएं कीं, जिन्हें सम्राट की राजधर्म यात्राएं कहा गया।[4] अनेक स्थानों पर उन्होंनें शिला अभिलेख उत्कीर्ण कराये। मौर्य काल की सर्वोत्कृष्ट प्रस्तराकृतियां कलात्मक स्तंभ हैं जो अपने भव्य आकार, सुसज्जा, चमक में बेजोड हैं।[5] सारनाथ के सिंह-शीर्ष स्तंभ पर चार पशु आकृतियां (गज, सिंह, अश्व, वृषभ) उत्कृष्ट मूर्तिकला के उदाहरण है, जिसमें वास्तुकला तथा मूर्तिकला दोनों की समन्वयात्मक कला अपनी पूर्णता पर पहुँच गयी।[6] उत्कृष्ट प्रस्तर शिल्प की कार्य कुशलता ने भारतीय कला के इतिहास में एक समृद्ध मूर्तिकारी को परिपोषित किया और परवर्ती बौद्ध मूर्तिकला में चिरस्थायी योगदान दिया।

सिद्धार्थ ने उन्नीस साल की आयु (534 ई०पू०) में घर छोड़ा। छह वर्ष तक योग-तपस्या करने के बाद ध्यान और चिन्तन द्वारा 36 वर्ष की आयु (528 ई०पू०) में बोधि (ज्ञान) प्राप्त कर वह बुद्ध हुए। फिर 45 वर्ष तक उन्होंने अपने धर्म (दर्शन) का उपदेश कर अस्सी वर्ष की आयु में (483 ई०पू०) दो साल वृक्षों के बीच में, बैसाख पूर्णिमा की रात्रि में, कुसीनारा स्थान पर बुद्ध का महापरिनिर्वाण हुआ।[7] निर्वाण से पूर्व आनंद द्वारा उनकी अन्तिम क्रिया के सम्बन्ध में पूछे जाने पर बताया कि उनका अन्तिम संस्कार-क्रिया चक्रवर्ती राजा के समान हो और अपने धातु अवशेषों पर स्तूप बनाने की अनुमति दी।[8] साथ ही भगवान बुद्ध ने यह निर्देश भी दिया कि उनकी रूपाकृति की पूजा न की जाये।[9] भगवान बुद्ध की मृत्यु के बाद बडे राजसी सम्मान के साथ कुशीनगर में अन्तिम संस्कार हुआ। दाह-संस्कार के बाद मल्लों ने धातु (राख) पर अधिकार कर लिया।[10] अन्य

आठ[11] राजाओं ने भी धातु-अवशेषों को प्राप्त करने के प्रयत्न किये। परस्पर युद्ध की आशंका को देखते हुए द्रोण नामक चतुर ब्राह्मण ने धातुअंशो को आठ भागों में विभक्त करने का प्रस्ताव रखा,[12] जिसे सभी स्वीकार करते हुए अपना-अपना धातु हिस्सा लेकर घर लौट गये। इन भस्मावशेषों पर आठ धातु गर्भ स्तूपों का निर्माण अपने-अपने राज्यों–राजगृह, कपिलवस्तु, अल्लकप्प, रामग्राम, पावा, वैशाली, वेठद्वीप, कुशीनगर में करवाया। सांची के दक्षिणी तोरण-द्वार पर इस घटना को प्रस्तारांकित किया गया है।[13]

मौर्य सम्राट अशोक ने अपने शासन काल के अन्तिम दशक में लगभग ईसा पूर्व 242-232 के बीच, स्तूपों को खोलकर पूर्व धातु अंशों को निकाल कर असंख्य नये स्तूपों का निर्माण करवाया।[14] ह्वेनसांग ने अपने यात्रा विवरण में अशोक द्वारा बनवायें गये 84,000 स्तूपों का उल्लेख किया है।[15] शनैः शनैः स्तूप-पूजा बौद्धधर्म का अभिन्न अंग बन गयी। स्तूप-पूजा का व्यापक प्रचार तथा प्रसार सुदूर[16] देशों तक पहुंचने लगा और बौद्ध स्तूप ही एक मात्र पूजा के प्रतीक बन गये। यही कारण है कि उत्तर-अशोक युग में उत्कीर्ण प्रस्तर शिल्पाकृतियों में स्तूप पूजा की प्रधानता है। सांची, भरहुत, अमरावती, सारनाथ, बोधगया, मथुरा, रत्नागिरी, नागार्जुनकोंडा, तक्षशिला आदि की स्थापत्य वेदिकाओं द्वार-तोरणों पर स्तूप-पूजा के दृश्यों को अंकित किया गया है।

भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद शताब्दियों तक हीनयान मत का प्रभाव बना रहा। हीनयानी अवतारवाद में विश्वास नहीं रखते थे अतः बुद्ध का अवतार न मानकर केवल महापुरुष के रूप में ही माना। मूल बौद्ध शाखा से सम्बन्धित होते हुए हीनयानियों ने तथागत को महापुरुष चक्रवर्ती के रूप में समादर देते हुए उनकी प्रतिमा-पूजा को अस्वीकार कर दिया। उनमें देवत्त्व का अभाव मानते हुए प्रतीक-पूजा को ही उचित माना अतः सांची, सारनाथ, अमरावती, मथुरा, भरहुत के शिल्पांकनों में भगवान बुद्ध की उपस्थिति को सांकेतिक प्रतीकों द्वारा अभिव्यक्ति मिली। बौद्ध स्तूपों पर अलंकरण सज्जा में–गज, कमल, वृषभ, अश्व, संबोधि-वृक्ष, धर्मचक्र, त्रिरत्न, छत्र, उष्णीष, स्तूप, बुद्ध-पदचिह्न, पादुका, चक्रमपथ, वजासन, आदि सांकेतिक प्रतीकों को धर्मनिष्ठ शिल्पियों ने यथास्थान अंकित करते हुए, आस्था व्यक्त की।[17]

भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण के लगभग एक सौ वर्ष बाद बौद्ध संघ दो सम्प्रदायों में विभक्त हो गया—प्रथम 'थेरवाद', जो प्राचीन विचारधारा में विश्वास रखता था और दूसरा 'महासंघिक' जो प्रगतिशील विचारधारा का समर्थक रहा। आगे चलकर थेरवाद सम्प्रदाय से हीनयान और महासंघिक सम्प्रदाय से महायान शाखा का विकास हुआ। वस्तुतः हीनयान और महायान के दोनों ही सम्प्रदायों ने प्रभूत मात्रा में बौद्ध-कलाकृतियों को जन्म दिया। बौद्ध धर्मानुयायियों के उपासना काल खंड को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है।

1. **हीनयान सम्प्रदाय** (मूल बौद्ध शाखा) के प्रभाव में भगवान बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित प्रमुख घटनाओं पर आधारित बुद्ध सूचक प्रतीक रूपों—गज, सिंह, अश्व, वृषभ, कमल, चरण-चिह्न और धर्मचक्रादि की प्रतीकात्मक पूजा[18] प्रचलित रही। सम्राट अशोक के शासनकाल से कुषाणकाल के प्रारम्भ तक हीनयानी सम्प्रदाय भारतीय मूर्तिकला पर छाया रहा।

2. **महायान सम्प्रदाय** : कुषाणकाल के प्रथम शासक कनिष्क के राज्यारोहण (78 ई०) के तुरंत बाद बुद्ध की उपासना का द्वितीय चरण प्रारम्भ होता है। महायान सम्प्रदाय के प्रभाव में भगवान बुद्ध और बोधिसत्वों की पाषाणमयी प्रतिमाओं का उद्भव हुआ। अवतारवाद के समक्ष बौद्धधर्म को जीवित रखने की भावना के कारण महायान सम्प्रदाय का उदय हुआ, जिसमें बुद्ध को आदि बुद्ध अथवा बोधिसत्व का रूप प्रदान किया गया और उनमें ईश्वरत्त्व की कल्पना करते हुए साकार रूप में भगवान बुद्ध की प्रतिमाओं का रूपांकन किया गया।

शुंगकाल तक बौद्धधर्म मुख्यतः हीनयानी सम्प्रदाय से प्रभावित रहा और इसी समय मथुरा मूर्तिकला का केन्द्र बनकर ख्याति अर्जित करने लगा।[19] इस काल तक बुद्ध की प्रतिमा का रूपांकन नहीं हुआ था। बौद्धों के धार्मिक समाज में तथागत की साकार प्रतिमा को लेकर कालान्तर तक विवाद जारी रहा। नवीनतम शिल्पों में अनेकों ऐसे कला-रूपों को प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति मिली जो धार्मिक मान्यताओं के साथ-साथ अलंकरण सज्जा के अभिन्न अंग बन गये। ऐसे प्रतीकोपासना रूपों में—कल्पवृक्ष, बोधिवृक्ष, लताएं, पद्मदल लता, पुष्प-मालाएं, रत्न मालाएं, पूर्णघट, अष्टमांगलिक चिह्न, शंख, स्वास्तिक, श्रीवत्स, घण्टावली, पंच पट्टिका, प्रमुख हैं। अन्य जीवों में – मकर, कच्छप, मीन-मिथुन, नाग-नागिनी, यक्ष-यक्षिणियां भी अलंकरण का प्रतीकात्मक माध्यम बनी हैं।[20] शुंगकालीन प्रस्तर शिल्प में पशु-प्रतीकांकन

बार-बार दिखाई पड़ता है। डॉ० अग्रवाल के मतानुसार "उन्हें तद्युगीन धर्म प्रतीकों के रूप में और नाना योनियों में उत्पन्न बोधिसत्व को स्वीकार करना चाहिए क्योंकि निद्देश नामक बौद्ध ग्रन्थ में पशु-पूजा का उल्लेख हुआ है। वहाँ उन्हें हस्तिव्रत, अश्वव्रत, गोव्रत, सुपर्णव्रत आदि नाम दिया है। शुंगकालीन कला में सिंह, गज, मृग आदि अनेक पशुओं को चैत्य की पूजा करते हुए प्रदर्शित किया गया। शुंगकालीन मूर्ति-शिल्प में ऐसी अनेक आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं, जिनको अग्रवाल महोदय ने विभिन्न प्रतीकों के रूप में स्वीकार कर व्याख्याएँ प्रस्तुत की है।"[21]

कुषाणकाल का प्रारम्भ बौद्ध शिल्पकला के उत्थान का स्वर्णयुग है।[22] इस काल में महायान संप्रदाय पूर्णरूप से विकसित हो गया था। बौद्ध धर्म और कला में परिवर्तनकारी प्रभाव के लक्षण दिखाई देने लगे। प्रथम शताब्दी की मथुरा कला में तीन धार्मिक विचारधाराओं (जैन, बौद्ध तथा ब्राह्मण) का मिलन है।[23] जैन और ब्राह्मण धर्म के भक्ति आंदोलन से प्रेरित होकर बौद्ध अनुयायियों ने अपनी पूजा के लिए बौद्ध प्रतीकों की प्राचीन परम्परा को त्याग कर देव उपासना के लिए अपने आराध्य देव की नयी प्रतिमाओं का सृजन करवाया। परम्परागत प्रतीक चिह्नों की पूजा के स्थान पर बौद्ध प्रतिमाएँ अधिकाधिक लोकप्रिय होने लगीं और साकार रूप में उनकी पूजा-अर्चना होने लगी,[24] जिसमें महासंघिक मत ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। महासंघिकों ने बोधिसत्व (अप्रत्यक्ष रुप से भगवान बुद्ध के विविध रूप) की प्रतिमा का निर्माण व उसकी पूजा को उचित माना। परवर्ती काल में महासंघिक से ही नवीन 'महायान शाखा' का विकास हुआ।[25] महायान शाखा के प्रतिपादकों ने बुद्ध के नये रूप को ही जनता के सम्मुख उपस्थित करके प्राणी मात्र की भलाई के लिए बोधिसत्व के जीवन आदर्शों का प्रचार किया। बोधिसत्व का तात्पर्य है—दूसरे के कल्याणार्थ अपने देश, घर तथा सुख का परित्याग। इस नवीन विचारधारा को 'महायान' कहा गया। धीरे-धीरे महायानी बौद्धधर्म भक्तिवाद से प्रेरित होकर, तथागत को अवतारीपुरुष मानकर मूर्तियाँ बनवानी प्रारम्भ कर दी। इसके साथ ही इन नवीन बुद्ध—रूपाकृतियों को चैत्यों में प्रतिस्थापित करना प्रारम्भ कर दिया।[26]

महायानी बौद्धों ने पहले बोधिसत्वों की रूपाकृतियों के निर्माण में रुचि ली, तदुपरांत भगवान बुद्ध का रूपांकन किया गया। निष्ठावान बौद्ध कलाकारों ने बुद्ध की प्रतिमाएं बनाकर उन्हें संकोचवश बोधिसत्व ही कहा, बुद्ध नहीं। मथुरा के कुषाण कालीन मूर्तिशिल्पों में बुद्ध तथा बोधिसत्वों की रूपाकृतियों में समान भाव

है। परवर्ती काल में बुद्ध को सामान्य भिक्षु के रूप में और बोधिसत्त्वों को आभूषण-सज्जा के साथ राजाओं के रूप में रुपायित किया गया। बोधिसत्व की आदमकद प्रतिमाओं को बनाने की प्रेरणा मौर्य शुंगकालीन यक्ष प्रतिमाओं से मिली।[27]

कुषाण शासक कनिष्क (78-101 ई०) स्वयं बौद्ध धर्मनिष्ठ, विद्यानुरागी, कलासंरक्षक[28] एवं महायानी सम्प्रदाय का अनुयायी था।[29] अपने राज्यारोहण के तत्काल बाद ही कनिष्क ने अपने कुशल मूर्तिकारों को बुद्ध प्रतिमा बनाने का शासनादेश दिया होगा। अतः इसी कारण कनिष्क के द्वारा प्रवर्तित संवत् की प्रारम्भिक तिथि युक्त बोधिसत्व की प्रस्तरांकित प्रतिमाएँ प्राप्त हुईं। इनके शासनकाल में प्रख्यात भारतीय और यूनानी बौद्ध मूर्तिकला की दो कला शैलियों का विकास हुआ—गांधार और मथुरा। पश्चिम-उत्तर प्रान्त में ग्रीक कलाशैली से प्रभावित मूर्तिकला को "गांधार मूर्तिकला" कहा गया। गांधार प्रदेश भारतीय, चीन, इराक, ग्रीक और रोम संस्कृति का संधि-स्थल था, जहां प्रथम शताब्दी में विविध प्रभावों को आत्मसात करती हुई मूर्तिकला की नवीन शैली का विकास हो रहा था।[30] इस कला में भारतीय कला के मूल तत्त्वों का अभाव और दैहिक सौन्दर्य सौष्ठव को प्रमुखता से रूपायित किया जाता। इस सम्बन्ध में डॉ० राजेन्द्र पांडे ने उचित लिखा है कि "इस कला की विषयवस्तु तो भारतीय है, किन्तु उनकी निर्माण-शैली यूनानी है। इन मूर्तियों में बुद्ध यूनानी देवता अपोलो सरीखे लगते हैं। उनकी मुद्राएं तो बौद्ध हैं, जैसे कमलासन मुद्रा में बुद्ध बैठे हैं किंतु मूर्तियों के मुखमंडल और वस्त्र ग्रीक शैली के हैं। बोधिसत्वों की मूर्तियाँ यूनानी राजाओं की भांति वस्त्राभूषणों से सजी है, जिसमें वे आध्यात्मिक व्यक्ति न लगकर सम्राट लगते हैं।"[31] यह एक संयोग ही कहा जायेगा कि जिस कालांश में गान्धार शिल्पी बुद्ध प्रतिमाओं को रुपायित कर रहे थे, उसी समय मथुरा के मूर्तिकार भी भगवान बुद्ध की दिव्य रूप छवि को अंकित कर रहे थे। गान्धार और मथुरा मूर्तिकला की समानान्तर दो शैलियों ने तथागत बुद्ध की रूपाकृति को अपनी-अपनी परम्परा और शैलीगत विशेषताओं के अनुरूप प्रदर्शित किया।

उत्तरी भारत में मथुरा बौद्ध मूर्तिकला का प्रमुख निर्माण केन्द्र था। मथुरा में निर्मित भगवान बुद्ध की प्रतिमा भारतीय कला का उत्कृष्ट एवं विशुद्ध रूप है। तत्कालीन मथुरा मूर्तिकारों ने साक्षात् बुद्ध को कभी नहीं देखा था अतः इसमें

कल्पना और श्रेष्ठ लक्षणों को ही आधार माना गया। महापुरुषों के बत्तीस लक्षणों[32] को आदर्श प्रेरणा मानकर प्रतिमाएँ रूपांकित होने लगीं। इन लक्षणों में स्वीकार किया गया कि दोनों भौंहों के मध्य एक छोटा सा वर्तुलाकार चिह्न (उर्णा)[33] होना चाहिये। कान को अत्यधिक लम्बा (प्रलम्बकर्णपाश)[34], घुटने तक लम्बे हाथ (अजानबाहु)[35] महापुरुष होने के बोधक चिह्नों में धर्म चक्रांकित हस्त-पाद को स्वीकार किया गया। भगवान बुद्ध का मुण्डित मस्तक[36] विशाल वक्ष जैसे लक्षण स्वीकृत हुए। चौड़ी छाती, कमर काय बन्धन, पूर्ण दिव्य भाव में खुले नेत्र, मुख-मण्डल पर स्मित भाव दर्शनीय है। प्रारम्भ में बुद्ध प्रतिमाओं को प्रायः दो रूपों में ही रूपायित किया गया। प्रथम—खड़ी हुई बुद्ध प्रतिमा और द्वितीय पद्मासन रूप में। पद्मासन मुद्रा के लिए मूर्तिकारों ने योगी का आदर्श अपने समक्ष रखा।[37] प्रायः बुद्ध और बोधिसत्वों की मूर्तियों का एक ही स्कन्ध ढ़का हुआ दिखाया गया है।[38] शरीरांगों से वस्त्रों को प्रायः चिपके हुए धारीदार सिलवटें कलात्मक ढंग से प्रदर्शित की गयी है। मथुरा की कुषाण कालीन बुद्ध एवं बोधिसत्वों की भव्य आकर्षक तथा विशाल प्रतिमाओं का निर्माण हुआ, जिनमें आध्यात्मिक भावना एवं देवत्व-भाव की अभिव्यक्ति निष्ठापूर्वक की गयी है बोधिसत्व तथा बुद्ध प्रतिमाओं में भगवान की हस्त मुद्राओं में—ध्यान मुद्रा, अभय मुद्रा, भूमि स्पर्श मुद्रा एवं धर्मचक्र प्रवर्तन—मुद्राएं प्रमुख रूप से मथुरा शिल्पकारों ने उत्कीर्ण की है।[39] स्थानक प्रतिमाओं में विशेषतः अभय व वरद मुद्राओं में निर्मित की गयी। भगवान बुद्ध और बोधिसत्व की मूर्तियां प्रायः लाल बलूए पत्थर की हैं, जिस पर स्वेत चित्तियां है। इन मूर्तियों को बड़े आकार में हृष्ट-पुष्ट एवं चारों ओर से कोर कर बनाया गया है।

भारतीय कला के प्रमुख विचारक एवं कला समीक्षकों में—डॉ० आनंद कुमार स्वामी[40], डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल[41], ई० वी० हेवेल[42], जायसवाल, डॉ० नलिनाक्ष दत्त[43], डॉ० कृष्णदत्त वाजपेयी[44], नीलकंठ पुरुषोत्तम जोशी[45], श्री रायकृष्ण दास[46] प्रमुख हैं। जिन्होंने बौद्ध प्रतिमाओं का अध्ययन करते हुए निष्कर्ष निकाला कि बुद्ध की प्रथमाकृति गांधार में नहीं, अपितु मथुरा मूर्तिकला-केन्द्र पर रूपायित की गई। मथुरा में परिपोषित यह कला शैली गांधार की वास्तविकता प्रधान शैली से पूर्णतः भिन्न है। पद्मासन में बैठी हुई बुद्ध और बोधिसत्व की प्रतिमाएँ उस परम्परा की हैं जिसे हम भारतीय साहित्य में तथा मोहनजोदड़ों से लेकर प्राचीन जैन मूर्तिकला में पाते हैं।[47] मथुरा की कला शैली के समकालीन विशुद्ध मध्य भारतीय देशी

शैलियां–भरहुत, साँची भी समान्तर रूप से प्रवाहित हो रही थीं। मथुरा में बनी भगवान बुद्ध और बोधिसत्वों की अभिलेखांकित प्रतिमाओं पर सम्राट कनिष्क का राज्य–संवत्सर अंकित किया गया है जो भगवान बुद्ध की प्रथमाकृति का प्रबल साक्ष्य है। भगवान बुद्ध की इस नवीनतम रूप छवि ने धर्मनिष्ठ बौद्ध समाज को प्रभावित किया। प्रतिमाओं को लोकप्रियता मिलने के कारण वे सुदूर स्थानों पर भेजी जाने लगीं। सारनाथ, वाराणसी, कौशाम्बी, श्रावस्ती, साँची, तक्षशिला आदि अनेक स्थानों से प्राप्त मथुरा की साक्ष्यांकित बौद्ध प्रस्तराकृतियां इसका प्रमाण हैं कि यहां विकसित प्रौढ़कला ही बुद्ध प्रतिमा की जन्मदात्री है।

कुषाण काल से पूर्व कौशाम्बी एक बौद्ध कला केन्द्र के रूप में विख्यात रहा। मौर्यसम्राट अशोक ने कौशाम्बी में प्रस्तरांकित एक स्तंभ लगवाया था।[48] कनिष्क के राज्य वर्ष (80 ई०) में बुद्ध की प्रस्तरांकित प्रतिमा कौशाम्बी से प्राप्त हुई है। कनिष्क के शासन काल में कौशाम्बी बौद्ध कला ने काफी प्रगति की। सम्राट कनिष्क के राज्य वर्ष के दूसरे और तीसरे (80 ई० और 81 ई०) वर्ष की बोधिसत्व की स्थानक प्रतिमाएँ सारनाथ से भी प्राप्त हुई हैं। सम्राट कनिष्क के तीसरे राज्य वर्ष (80 ई०) की 'बोधिसत्व' की स्थानक प्रतिमा सारनाथ से प्राप्त हुई हैं। बुद्ध का दाहिना हाथ अभय-मुद्रा में है।[49] सम्राट कनिष्क के तीसरे राज्य वर्ष (81 ई०) की सारनाथ उत्खनन से प्राप्त प्रतिमा भी अति महत्वपूर्ण है। यह मथुरा के लाल बलुए पत्थर से बनी है, जिसमें मास एवं दिवस का वर्णन मिलता है। लेख में मूर्ति को 'बोधिसत्व' कहा गया है। मथुरा निवासी त्रिपिटकाचार्य बल द्वारा प्रतिमा के साथ एक छत्र-यष्टि की प्रतिस्थापना की गयी और उसी ने मथुरा श्रावस्ती आदि स्थानों पर इसी प्रकार की प्रतिमाएँ स्थापित करवाईं। यष्टि पर दस पंक्तियों वाला ब्राह्मी लेख उत्कीर्ण है[50] जिसका अनुवाद इस प्रकार है–

> "(महाराज कनिष्क के तीसरे राज्यवर्ष (81 ई०), तृतीय शरद (मास) के बाईसवें दिन पुष्यबुद्धि के शिष्य त्रिपिटिकाचार्य भिक्षु बल ने बोधिसत्व की मूर्ति, छत्र और दंड सहित, काशी में भगवान के घूमने के स्थान में, अपने माता-पिता, उपाध्याय, अंतेवासी (शिष्य), त्रिपिटिकाचार्य बुद्धमित्र, वनस्पर और खरपल्लान तथा चतुर्वर्ग (भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक और उपासिका) के साथ सब जीवों के कल्याण और आनंद के लिए प्रतिष्ठापित किया।)"

कुषाण वंशीय वाशिष्क के शासनकाल में बौद्ध मूर्तिकला की बहुत उन्नति हुई। स्थान-स्थान पर बुद्ध प्रतिमाओं की स्थापना होने लगी। वाशिष्क राज्यकाल के अठ्ठाइसवें वर्ष में (=106 ई०) बनी प्रतिमा साँची से प्राप्त हुई है। प्रतिमा पर अंकित लेख[51] से ज्ञात होता है कि धर्मदेव निर्मित विहार में भगवान बुद्ध (शाक्यमुनि) की प्रतिमा स्थापित की गयी। कुषाण कालीन बुद्ध प्रतिमा का एक उदाहरण विशेष महत्त्वपूर्ण है। हुविष्क के शासनकाल में मथुरा में बनी बुद्ध प्रतिमा पर अंकित लेख से ज्ञात होता है कि—हुविष्क द्वारा मथुरा में सब प्राणियों के हित तथा सुख के लिए बुद्ध प्रतिमा को विहार में स्थापित करवाया।[52] इस प्रतिमा का स्थापना वर्ष सम्वत्सरे 51 (= 129 ई०) है। श्री वोगल ने अपने मथुरा संग्रहालय के सूची-पत्र में कुषाण कालीन बोधिसत्व की अति प्राचीन प्रतिमा का उल्लेख किया है। इस प्रतिमा को कटरा से प्राप्त किया गया जिसमें बोधि वृक्ष के नीचे भगवान को पद्मासन मुद्रा में, दाहिने हाथ को अभय मुद्रा में प्रदर्शित किया है।[53] इसी प्रारम्भिक क्रम में भगवान बुद्ध की प्राचीन प्रतिमा कोलकत्ता संग्रहालय में सुरक्षित है, जो ईसवीं सन् 142 में निर्मित की गयी।[54]

सारतः, भगवान बुद्ध की प्रथमाकृति का रूपायन विशुद्ध रूप से भारतीय रहा है। कुषाण शासकों (कनिष्क, हुविष्क और वासुदेव) का शासन काल मथुरा मूर्तिकला की यौवनावस्था (स्वर्णकाल) का काल है। इसी काल में रूप-सौन्दर्य की संवेदना धर्म-भाव के साथ-साथ चली और भगवान बुद्ध की दिव्य रूपाकृतियों का आलोक दूर-दूर तक पहुँचा। कुषाण काल में निर्मित मथुरा की कलात्मक प्रतिमाएँ उत्तर भारत के विभिन्न स्थानों से प्राप्त हुईं।[55] तिथि सहित प्रस्तरांकित बौद्ध प्रतिमाओं से शंका समाधान हो जाता है कि मथुरा की कला कृतियां अपनी शैलीगत विषय वस्तु, भाव प्रवणता के कारण प्रसिद्ध हुईं और सुदूर स्थानों पर भेजी जाती थी।[56] मथुरा की शिल्प शालाओं के निपुण मूर्तिकारों ने एक विशेष योगदान दिया कि बुद्ध की साकार प्रतिमाओं द्वारा भारतीय जनमानस को धर्मनिष्ठ बनाया। तथागत बुद्ध श्रेष्ठ मानव, देवोपम रूप एवं साकार भगवान बन गये। प्रारम्भिक बुद्ध प्रतिमाओं पर अंकित अभिलेखों में धार्मिक आस्था प्रदर्शित करके दान दाताओं ने दिव्य-दर्शन की भावभूमि पर बोधिसत्त्व को पूजनीय बनाया और बुद्ध भारतीय मानस की समग्र दिव्य रूपात्मक संवेदना में घुल-मिल गये। एक समय था जब बौद्ध ज्ञान एवं दिव्य रूपछवि से प्रभावित होकर तीन चौथाई विश्व मानव बुद्ध की शरण

में चला गया। सौन्दर्यबोध, आध्यात्मिक भाव एवं अभिज्ञान पूर्वक निष्ठा से बनी प्रतिमाओं का प्रचार सुदूर देशों तक पहुँचा। विश्वविख्यात, विशाल एवं भव्य रूप में बनी बौद्ध प्रतिमाओं[57] ने उपासक, भिक्षु एवं श्रद्धालुओं को प्रभावित किया। कई देशों ने बौद्ध धर्म को राजकीय धर्म रूप में स्वीकार किया[58]। विश्व में जहाँ-जहाँ बौद्ध धर्म पहुँचा, वहीं भगवान बुद्ध और बोधिसत्व की दिव्य प्रतिमाओं[59] ने अपना दिव्यालोक प्रकाशित किया।

संदर्भ एवं टिप्पणी

1. कालसी (देहरादून) के तेहरवें शिला अभिलेख में वर्णित सम्राट अशोक के भाव उद्‌गार।
2. उत्तर प्रदेश में बौद्धधर्म का विकास : डा० नलिनाक्ष दत्त एवं डा० कृष्णदत्त वाजपेयी, पृ० 289, प्रथम सस्करण : 1956, उ०प्र० सरकार, लखनऊ।
3. अशोक और बौद्धधर्म का विस्तार : वी.पी. वापट (लेख) आजकल (वार्षिक बौद्ध विशेषांक) बौद्धधर्म 2500 वर्ष, दिसंवर 1956, पृष्ठ 40, पब्लिकेशन डिवीजन दिल्ली-8।
4. प्राचीन भारत : द्विजेन्द्रनारायण झा, पृष्ट 120, प्रथम संस्करण 2000, ग्रन्थशिल्पी (इण्डिया) प्रा०लि०, दिल्ली-92।
5. भारत का सांकृतिक इतिहास : डा० राजेन्द्र पाण्डे, पृष्ठ 109, प्रथम संस्करण 1976, उ०प्र० ग्रन्थ हिन्दी अकादमी, लखनऊ।
6. प्राचीन भारतीय प्रतिमा विज्ञान एवं मूर्तिकला : डा० बृज भूषण श्रीवास्तव, पृष्ठ 258-261, 1998 ई०, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
7. बौद्ध दर्शन : राहुल सांकृत्यायन, पृष्ठ 21, षष्टम सं० 1983, किताब महल, इलाहाबाद।
8. आनंद-कथं मयं भन्ते तथागतस्य सरीरे परिवज्जामाति।

   बुद्ध-अव्यावटा तुमहे आनन्द होथ तथागतस्स सरीर पूजाय

   बुद्ध-यथा खो आनन्द रज्जो चक्कवत्तिस्स सरीरे परिपज्जन्ति एवं तथागतस्स सरीरे पटिपज्जितब्बंति

   आनंद-कथंपनभन्ते रञ्जो चक्कवत्तिस्स सरीरे पटिपज्जन्तीति ?

   बुद्ध-चातुम्महापथे रज्जे चक्कवत्तिस्स थूपं करोन्ति। एवं चातुम्महापर्थ तथागतस्स थूपो कातव्यो।
9. परि निर्वाण-सूत्र।
10. प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मंदिर : डा० वासुदेव उपाध्याय पृष्ठ 49, प्रथम संस्करण 1972, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना।

11. राजगृह के राजा अजात शत्रु, कपिलवस्तु के शाक्य, अल्लकप के बुलि, रामग्राम के कोलिय, पावाके मल्ल, वैशाली के लिच्छवि, वेठद्वीप के एक ब्राह्मण, कुशीनगर के मल्ल।
12. प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मंदिर : डा० वासुदेव उपाध्याय पृष्ठ 13, प्रथम संस्करण 1972, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना।
13. साँची : देवला मित्र, पृष्ठ 29, संस्करण वर्ष 1993, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, नई दिल्ली।
14. रामग्राम स्तूप के अतिरिक्त आरम्भिक सभी सात प्राचीन स्तूपों को सम्राट अशोक ने खुलवाया और जो धातुअवशेष प्राप्त हुए, उन पर उन्होने तीन वर्ष के अल्पकाल में 84000 नये स्तूपों का निर्माण करवाया।
15. देवप्रिय सम्राट अशोक : रा०श्री० (लेख) हिन्दू संस्कृति अंक, कल्याण-511, पृ० 866, चतुर्थ संस्करण सं० 2051, गीताप्रेस, गोरखपुर।
16. चार बौद्ध परिषदें : भिक्षु जिनान्द (लेख) आजकल का वार्षिक अंक (वार्षिक बौद्ध विशेषांक) बौद्धधर्म 2500 वर्ष, दिसंबर-1956, पृष्ठ 33, दिल्ली-8।
17. बौद्ध वास्तु कला के स्मारक : स्तूप : पूनम स्वरूप (लेख) मई 19858, वर्ष-55, अंक-1, पूर्णांक-643, पृष्ठ 14-16, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001।
18. बुद्ध : मूर्तियों तथा चित्रकला में : महेन्द्र वर्मा (लेख), हिन्दुस्तान, रविवार 13 मई 1984 नई दिल्ली।
19. भारत का सांकृतिक इतिहास : डा० राजेन्द्र पाण्डे, पृष्ठ 109, प्रथम संस्करण 1976, उ०प्र० ग्रन्थ हिन्दी अकादमी, लखनऊ।
20. प्राचीन भारतीय प्रतिमा विज्ञान एवं मूर्तिकला : डा० बृजभूषण श्रीवास्तव, पृष्ठ 282, 1998 ई०, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
21. प्राचीन भारतीय प्रतिमा विज्ञान एवं मूर्तिकला : डा० बृजभूषण श्रीवास्तव, पृष्ठ 283, 1998 ई०, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
22. भारतीय कला : वासुदेव शरण अग्रवाल, पृष्ठ 150-159, द्वितीय संस्करण 1966, वाराणसी।
23. मथुरा : द कैडिल ऑव इण्डियन कलट इमेजेज (लेख) इण्डोलॉजिकल स्टडीज, (सं० देवेन्द्र हांडा) पृष्ठ 49-63, 1987, दिल्ली।
24. भारत का सांकृतिक इतिहास : डा० राजेन्द्र पाण्डे, पृष्ठ 138, प्रथम संस्करण 1976, उ० प्र० ग्रन्थ हिन्दी अकादमी, लखनऊ।
25. प्राचीन भारतीय प्रतिमा विज्ञान एवं मूर्तिकला : डा० बृजभूषण श्रीवास्तव, पृष्ठ 185, 1998 ई०, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

26. भारत में प्रतीक पूजा का आरम्भ और विकास : साँवलिया बिहारी लाल वर्मा, पृ० 135, प्र०सं० 1974, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना-3।
27. कनिष्क ने अपने राजकीय सिक्कों पर बुद्ध की मूर्ति अंकित करवाकर बौद्ध महायानी होने का परिचय दिया।
28. भारतीय मूर्ति कला : रायकृष्णदास पृ० 53, पृष्ठ संस्करण, संवत-2030, नागरी प्रचारणी सभा, काशी।
29. भारत का सांकृतिक इतिहास : डा० राजेन्द्र पाण्डे, पृष्ठ 139, प्रथम संस्करण 1976, उं०प्र० ग्रन्थ हिन्दी अकादमी, लखनऊ।
30. भारत का सांकृतिक इतिहास : डा० राजेन्द्र पाण्डे, पृष्ठ 139, प्रथम संस्करण 1976, उ०प्र० ग्रन्थ हिन्दी अकादमी, लखनऊ।
31. प्राचीन भारतीय प्रतिमा विज्ञान एवं मूर्तिकला : डा० बृजभूषण श्रीवास्तव, पृष्ठ 191, 1998 ई०, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
32. ऊर्णा..........भ्रुवोर्मध्ये जाता हिमरजत प्रकाशा। (ललित विस्तार)
33. प्राचीन भारतीय प्रतिमा विज्ञान एवं मूर्तिकला : डा० बृजभूषण श्रीवास्तव, पृष्ठ 191, 1998 ई०, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
34. प्राचीन भारतीय प्रतिमा विज्ञान एवं मूर्तिकला : डा० बृजभूषण श्रीवास्तव, पृष्ठ 191, 1998 ई०, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
35. बुद्ध के बालों का अंकन निदान कथा के आधार पर हुआ है।
    मथुरा की मूर्ति कला : नीलकंठ पुरुषोत्तम जोशी, पृष्ठ 20, 1965, मथुरा संग्रहालय।
36. उत्तर प्रदेश में बौद्धधर्म का विकास : डा० नलिनाक्ष दत्त एवं डा० कृष्णदत्त वाजपेयी, पृ० 289, प्रथम संस्करण 1956, उ०प्र० सरकार, लखनऊ।
37. मथुरा संग्रहालय का सूची पत्रः (कैटलोग) फोगल, प्लेट-16ए एवं 16।
38. उत्तर प्रदेश में बौद्धधर्म का विकास : डा० नलिनाक्ष दत्त एवं डा० कृष्णदत्त वाजपेयी, पृ० 281, प्रथम संस्करण 1956, उ०प्र० सरकार, लखनऊ।
39. दि ओरिजन आफ दि बुद्ध इमेज, 1972, नई दिल्ली।
    हिस्ट्री आफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट, 1927, लन्दन।
40. मथुरा कला, 1964 अहमदाबाद, भारतीय कला वाराणसी, 1966।
    कला और संस्कृति द्वितीय संस्करण, इलाहाबाद, 1958।
41. इण्डियन स्कल्पचर्स एण्ड पेन्टिंग : ई०वी० हैविल, द्वि०सं० 1928, लन्दन।
42. उत्तर प्रदेश में बौद्धधर्म का विकास : डा० नलिनाक्ष दत्त एवं डा० कृष्णदत्त वाजपेयी, पृ० 281, प्रथम संस्करण 1956, उ०प्र० सरकार, लखनऊ।

43. उत्तर प्रदेश में बौद्धधर्म का विकास : डा० नलिनाक्ष दत्त एवं डा० कृष्णदत्त वाजपेयी, पृ० 280, प्रथम संस्करण 1956, उ०प्र० सरकार, लखनऊ।
44. मथुरा की कला : नीलकंठ पुरुषोत्तम जोशी, पृष्ठ 19-21, 1965, मथुरा संग्रहालय, मथुरा।
45. भारतीय मूर्ति कलाः रायकृष्णदास पृ० 48-49, षष्ठ संस्करण, संवत-2030, नागरी प्रचारणी सभा काशी।
46. उत्तर प्रदेश में बौद्धधर्म का विकास : डा० नलिनाक्ष दत्त एवं डा० कृष्णदत्त वाजपेयी, पृ० 280, प्रथम संस्करण 1956, उ०प्र० सरकार, लखनऊ।
47. उत्तर प्रदेश में बौद्धधर्म का विकास : डा० नलिनाक्ष दत्त एवं डा० कृष्णदत्त वाजपेयी, पृ० 291, प्रथम संस्करण 1956, उ०प्र० सरकार, लखनऊ।
48. प्राचीन भारतीय प्रतिमा विज्ञान एवं मूर्तिकला : डा० बृजभूषण श्रीवास्तव पृष्ठ 326, 1998 ई०, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
49. उत्तर प्रदेश में बौद्धधर्म का विकास : डा० नलिनाक्ष दत्त एवं डा० कृष्णदत्त वाजपेयी, पृ० 280, प्रथम संस्करण 1956, उ०प्र० सरकार, लखनऊ।
    सारनाथ संग्रहालय में द्रष्टव्य—बी (ए) 2, 3 प्रतिमाएँ।
50. भगवतो धर्मदेव विहारे प्रतिष्ठापिता। (सारनाथ बुद्ध प्रतिमा पर अंकित लेख)
51. महाराजस्य देवपुत्रस्य हुविष्क सम्वत्सरे 51 (=129 ई०) हेमंत भगवतः शक्यमुने प्रतिमा प्रतिष्ठापिता सर्वबुद्ध पुजार्त्थम सर्व दुखोपशमाय सवं-सत्व हित सुखार्थ महाराज देवपुत्र विहारे।
52. कैटलाग आफ दी आर्किओलॉलिकल म्यूजियम एट मथुराः जे०पी०एच० बोगल, पृष्ठ 46, प्लेट-VII।
    हिस्ट्री आफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट : ए०के० कुमारस्वामी, पेज 57, प्लेट-XXIII, फिगर-84।
53. भारत में प्रतीक पूजा का आरम्भ और विकास : सॉवालिया बिहारी लाल वर्मा, पृ० 134, प्र०सं० 1974, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना 3।
54. कौशाम्बी, वाराणसी, सारनाथ, श्रावस्ती, सॉची, तक्षशिला आदि स्थानों से मथुरा की तिथियुक्त प्रतिमाएँ प्राप्त हुई है।
    बोधिसत्व की आसन प्रतिमा जिस पर कुषाण सम्राट वासिस्क के शासन-काल का वर्ष 28 अंकित है (कैटेलॉग ऑफ म्यूजियम ऐट सॉची, ए-82, पादपीठ जिस पर खडी-मुद्रा में मूर्ति के दोनों पाद शेष है, इस पीठ पर एक लेख है जिसमें वस्कुषाण के शासन का वर्ष 22 अंकित है। (सॉची संग्र०, ए 83), चौकी का खंड जिस पर एक मूर्ति का एक पांव ही शेष है, इस पर जो अभिलेख खुदा है, उसमें भावी बुद्ध मैत्रेय की प्रतिष्ठा का उल्लेख है (सॉची संग्र०, ए 84)।

साँची: देबला मित्र, पृष्ठ 5, संस्करण 1993, प्रकाशक, महानिदेशक भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, नई दिल्ली।

55. मथुरा की मूर्तिकला : नीलकंठ पुरुषोत्तम जोशी, पृष्ठ 3, संस्करण 1965, मथुरा संग्रहालय।

56. आठवी शताब्दी में जापान के सम्राट शोम्भू ने (724-756 ई०) लगभग 54 फुट ऊँची कास्य प्रतिमा का निर्माण करवाया जो विश्व की अद्वितीय कलाकृति है।

57. युआन-च्वांग ने अपने यात्रा विवरण में उल्लेख किया है कि सन् 630 ई० में उसने बामियान (अफगानिस्तान) में तृतीय और चतुर्थ शताब्दी में बनी दो विशाल बुद्ध प्रतिमाएँ देखी थी। यह दोनों ही पहाड़ी को काटकर बनायी गयी थी, जिनकी ऊँचाई क्रमशः 175 और 125 फुट थी। विश्व प्रसिद्ध वृहताकार प्रतिमाओं को अफगान विद्रोही तालिबान समर्थकों ने नष्ट कर दिया। इसके साथ ही उनके राजकीय संग्रहालयों में भगवान बुद्ध एवं बोधिसत्व से सम्बन्धित असंख्य प्रतिमाओं को विध्वस्त कर दिया।

58. काल और कला: दिनकर कौशिक, पृ० सं० 62-68, प्रथम सं० 1967, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-6।

59. बुद्धः मूर्तियों तथा चित्रकला में : महेन्द्र वर्मा, (लेख) हिन्दुस्तान, रविवार 13 मई 1984, नई दिल्ली।

बौद्ध वास्तुकला के स्मारकः स्तूपः (लेख) पूनम स्वरूप, आजकल, पृष्ठ 14, वर्ष 55, अंक 1, पूर्णांक 643, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001।

दक्षिण के हिन्दी महाकवि : आलुरि बैरागी चौधरी (1925–1978): एक मूल्यांकन

प्रो. पी. आदेश्वर राव

हिन्दी और तेलुगु के प्रसिद्ध कवि श्री आलुरि बैरागी चौधरी का जन्म आन्ध्र प्रदेश के गुंटूर जिले के तेनाली शहर का एक कस्बा ऐतानगर में सन् 1925 की गणेश चतुर्थी की पुण्य तिथि के अवसर पर एक प्रतिष्ठित "कम्मा" (चौधरी) परिवार में हुआ। उनके पिताजी का नाम श्री आलुरि वेंकट रायुडु और माता का नाम सरस्वती है।

बैरागी शैशव से ही होनहार थे। उनकी आरंभिक शिक्षा-दीक्षा ऐतानगर में ही सम्पन्न हुई। तेलुगू, अंग्रेजी और हिन्दी भाषाओं पर उन्होंने अत्यंत कम समय में ही पर्याप्त अधिकार प्राप्त किया। ग्यारह वर्ष की अल्प आयु में ही वे दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की "राष्ट्र-भाषा विशारद" परीक्षा में सर्व प्रथम रहे। गाँधी जी के शिष्य तथा हिन्दी प्रेमी होने के कारण श्री वेंकट रायुडु ने अपने पुत्र को हिन्दी भाषा एवं साहित्य के उच्चस्तरीय अध्ययन के लिए बिहार के मुजफ़्फ़र नगर के एक आश्रम में भेज दिया। छह-सात वर्ष वहाँ रहकर बैरागी ने हिन्दी साहित्य का गहन

अध्ययन किया और बारह-तेरह वर्ष की आयु से ही हिन्दी में कविता लिखना आरंभ कर दिया। वे प्रायः अपना अधिकांश समय अध्ययन तथा कविता लिखने में लगाया करते थे। उन्होंने अपनी आरंभिक कविताओं के दो संग्रहों को प्रकाशन के अयोग्य समझकर नष्ट कर दिया।

उत्तर भारत से अपने सोलहवें वर्ष में बैरागी ऐतानगर आ गये और दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की प्रवीण और प्रचारक परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो गये। इन दिनों तेलुगू और हिन्दी साहित्यों के साथ-साथ अंग्रेज़ी साहित्य के माध्यम से विश्व साहित्य का अध्ययन करना उनका व्यसन बन गया था। बीस साल की आयु में उनकी नियुक्ति प्रतित्पाडु हाई स्कूल में एक वरिष्ठ हिन्दी अध्यापक के रूप में हुई। वहाँ भी आकाश के क्षणों में पढ़ना-लिखना उनके दैनिक जीवन का अभिन्न अंग बन गया। वे एक सफल अध्यापक रहे। बैरागी जी में संस्कृत और उर्दू का ज्ञान भी पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। प्रतित्पाडु में उन्होंने चार वर्षों तक अध्यापन का कार्य किया। उसी कालावधि में उन्होंने "पलायन" की अधिकांश कविताएँ लिखी।

सन् 1950 में उन्होंने अपनी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और मद्रास चले गये। इन दिनों हिन्दी और तेलुगू साहित्य के साथ-साथ अंग्रेज़ी साहित्य के माध्यम से विश्व साहित्य का अध्ययन करना उनका व्यसन बन गया था। उस समय उनके चाचा चक्रपाणी एक प्रतिष्ठित पत्रकार तथा फिल्मी प्रोड्यूसर थे। उनके द्वारा संचालित तेलुगू 'चंदमामा' मासिक पत्रिका को जनता में लोकप्रियता मिली। उनके चाचा ने बैरागी को चंदामामा (हिन्दी) पत्रिका चलाने का कार्यभार सौंप दिया। बैरागी की देखरेख में चंदामामा अत्यंत आकर्षक ढंग से निकलने लगी और एक-दो वर्ष में ही सारे उत्तर भारत में उसकी लोकप्रियता बढ़ गयी। इसी समय कवि ने अपनी प्रौढ़ कविताओं के संग्रह को "पलायन" के नाम से प्रकाशित किया, जिसका हिन्दी संसार ने भव्य स्वागत किया। इसमें 1940-50 के बीच लिखी हुई कविताएँ हैं। कुछ समय के बाद बैरागी जी और उनके चाचा के बीच कुछ गलतफहमियाँ फैल गयीं और उसके फलस्वरूप उन्होंने "चंदामामा" (हिन्दी) के संपादकत्व को छोड़ दिया। उसके बाद डेढ़ वर्ष तक दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के साहित्य विभाग में काम करके, फिर वहाँ से भी बाहर आ गये।

उनकी आर्थिक दशा दिन-ब-दिन खराब होती गयी। वे भोजन इत्यादि के सम्बन्ध में भी किसी नियम का पालन नहीं करते थे। कभी खाते थे तो कभी भूखे

पड़े रहते थे। ऐसी दशा में भी उन्होंने कभी परिस्थितियों से समझौता नहीं किया। उनका व्यक्तित्व ऐसा था कि टूटने के लिए तैयार होते हैं, पर झुकने के लिए नहीं। वे ऐसे कम कवियों में से थे, जो अपने स्वाभिमान को किसी मूल्य पर बेचने को तैयार नहीं। उनकी अप्रकाशित हिन्दी कविताएँ 200 पृष्ठों से भी अधिक है। परन्तु हिन्दी में जो भी इनकी कविताएँ प्रकाशित हुई है, उन्हीं के बल पर, वे हिन्दी साहित्य के अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी है। दिनांक 9 सितंबर, 1978 को अपने छोटे भाई आलुरि सत्यम् के यहाँ स्वर्गवासी हुए।

काव्य

हिन्दी में "पलायन" बैरागी की कविताओं का सन् 1951 में प्रकाशित काव्य-संग्रह है। परन्तु इसको कवि की आरंभिक कविताओं का संग्रह कहा नहीं जा सकता। बैरागी ने इसके पूर्व रचित दो काव्य-संग्रहों को प्रकाशन के लिए अयोग्य समझकर नष्ट कर दिया था। "पलायन" की कविताओं को "बदली की रात" के नाम से सन् 1956 में--नीलाभ प्रकाशन की ओर से श्री उपेन्द्रनाथ अश्क ने पुनः प्रकाशित किया। हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं में इस पर सारगर्भित आलोचनाएं निकलीं। इसकी सभी कविताएँ अत्यन्त प्रौढ़ है। इन कविताओं के अध्ययन से यह विदित होता है कि इनकी रचना एक पहुँचे हुए कलाकार के द्वारा हुई है। इन कविताओं के अतिरिक्त बैरागी की अप्रकाशित कविताएँ बड़ी संख्या में हैं। उनमें से कतिपय कविताओं का प्रकाशन "फूटा दर्पण" शीर्षक काव्य-संग्रह में हुआ है। सन् 1989 में यह प्रकाशित हुआ है।

काव्य-वस्तु

बैरागी की काव्य-वस्तु में बड़ा वैविध्य है। उनकी कविता में परस्पर विरोधी विषयों का, प्रवृत्तियों का तथा दृष्टिकोणों का सुन्दर सामंजस्य प्राप्त होता है। कविवर बैरागी ने मानव और प्रकृति को अपनी कविता की वस्तु के रूप में स्वीकार किया है। मनुष्य के भावों तथा विचारों को उन्होंने प्रकृति का लिबास पहनाया है। बैरागी मूलतः एक मानववादी चिंतक एवं कलाकार हैं। वे काल्पनिक ईश्वर की अपेक्षा साधारण मनुष्य को अधिक सम्मान प्रदान करते हैं–

"मनुष्य यह अजेय है, मनुष्य यह महान् है,
निकट विशांध-गर्भ में छिपा हुआ विहान है।

मनुष्य की निर्मलता तथा विकास में, उसकी सृजनशीलता तथा सफलता में, कवि को सम्पूर्ण आस्था है। बैरागी ने निम्नांकित पंक्तियों में मनुष्य के भविष्य पर अपना विश्वास प्रकट किया है–

"रक्त-स्वेद-कर्दम के ऊपर मानवता का नलिन खिला है,
युग-युग के जीवन-विकास में, अभ्युन्नति का पंथ मिला है।
मानव रत विनाश-लीला में, पर मानवता सृजनशील है,
कितनी भूलों के कांटों पर खिला सफलता मधुर फूल है ?"

"पलायन" का 'जागृति गान' मानव में प्रसुप्त मानवता की जागृति का गान है। विश्व और मानव के बीच में अनादि काल से संघर्ष चलता रहा है, जिसमें मानव पराजित होता आया है। इसे देखकर कवि के मन में पीड़ा उत्पन्न होती है, जो निम्नांकित पंक्तियों में साकार हो उठी है–

"देख, विस्तृत यह कारागार, जिसे कुछ कहते हैं संसार,
और जिसकी हरेक दीवार मनुजता पर दुस्सह ललकार!"

इस कविता में कवि की सहानुभूति समाज के पद-दलित, शोषित मनुष्यों के प्रति है और कवि उनका पक्षधर होकर ओजपूर्ण वाणी में कह उठते हैं–

"निखिल मानवता का अपमान एक जन की पीड़ित चीत्कार,
समझ लो, बलात्कार जग पर, एक भूखी स्त्री का व्यभिचार!"

इतिहास के गर्भ में छिपे उन असंख्य प्रसंगों को लेकर कवि मानव की शीघ्र प्रगति चाहते हैं। कवि को मनुष्य की गतिहीनता अभीष्ट नहीं है, क्योंकि वह मृत्यु से भी बदतर है। संसार में मानवता के अभाव को देखकर बैरागी दारण व्यथा का अनुभव करते हैं–

"मानवता कहाँ अरे! वह गूँगे पशुओं की जमात है,
हाँ! सज-धज कर कहीं जा रही जिन्दा लाशों की बरात है।"

मनुष्य के प्रति बैरागी का दृष्टिकोण रिक्त करुणा एवं आर्द्रता से भरा हुआ नहीं है, अपितु वह परिस्थितियों की मांग के अनुरूप क्रांति एवं रक्तपात को समेटकर चलनेवाला है। सब परिणामों को दृष्टि में रखकर जो कुछ भी किया जाये, वह कवि के लिए स्वीकार्य है। "प्रकाश की पुकार" शीर्षक कविता में कवि ने सुप्त मानव को जगाने की चेष्टा की है। जब विक्षुब्ध विश्व-सिन्धु भी विनाश की ओर

प्रस्थान कर रहा है और दिगंत भी "प्रगाढ़ तिमिर-पटल से ढका हुआ सा" लक्षित होता है, तब कवि अपने उत्कंठित स्वर से प्रकाश को बुलावा देते हैं–

"उजाड़ विश्व-पंथ पर, लहू लुहान चरण धर,
भटक रही मनुष्यता श्रमित नमित सभार है।"

इस दयनीय स्थिति में ही, जब सारी मनुष्यता श्रमित, नमित होकर सभार दबी चलती है, प्रकाश की महती आवश्यकता है, जिसके आविर्भाव से मानव की कुंठित शक्तियाँ पुनः प्रज्ज्वलित हो सकेंगी और मानव को गंतव्य तक पहुँचाने में सहायक होंगी।

इस प्रकार बैरागी के हृदय में पीड़ित मानवता के प्रति असीम सहानुभूति दिखाई देती है। उनकी कविताओं में करुणामयी अन्तर्धारा सी बहती है। कवि मानव के विकास तथा उसके उज्ज्वल भविष्य में विश्वास प्रकट करते हैं।

मानव को प्राथमिकता देने पर भी कविवर बैरागी की दृष्टि प्रकृति के विविध रूपों की ओर आकर्षित होती है। प्रकृति के "सम्मोहक रूपों" ने कवि-कल्पना को उद्वेलित किया है। कवि के भावुक मन ने प्रकृति की गोद में उन्मुक्त विहार किया है और इनकी कविताओं में प्रकृति का उज्ज्वलतम रूप देखने को मिलता है। प्रकृति के परम्परागत रूपों के साथ-साथ उसके अनेक नवीन रूप भी उनकी कविता में अनावृत हुए हैं, जो कवि की मौलिकता को प्रमाणित करते हैं। कवि धरती की साज-सज्जा में ही प्रकृति की मनोमुग्धकारी सुषमा को देखना चाहते हैं।

"मुक्त वायु को बह आने दो
खुली प्रकृति की छवि पाने दो
हरी घास पर सो जाने दो
एक बार आँखें भर देखूं,
धरती का श्रृंगार चिरन्तन।"

कवि प्रकृति के सम्मोहक रूप के साथ-साथ, उसके रहस्यमय, प्रेरणाप्रद स्वरूप को भी व्यक्त करते हैं। वे अपने गायन से जीवन को निस्तब्ध निशा को दूर करना चाहते हैं और तिमिराच्छन्न गगन में प्रदीप्त उल्का की कांति-रेखा बनाना चाहते हैं–

"पतन-कलुष-मय अन्ध गगन में
जीवन के उजड़े आंगन में

अपने कटु ज्वलन्त गायन से
मैं जगमग उल्का की जलती एक लकीर बनाऊँगा।"

कवि ने प्रकृति के आलंबन रूप का अंकन किया है। उन्होंने प्रसन्न तथा प्रशांत प्रकृति का रम्य चित्रण किया है, जिसमें ज्योत्स्ना की निस्तब्धता, असीम नीलाकाश के नीचे लहरों का गायन अंकित है—

"स्तब्ध चन्द्रिका निशा मनोहर
फैला असीम नीला अम्बर
लहरों में तंद्रित जीवन-स्वर

★ ★ ★

विकच सुमों में हल्की सिहरन
मधुर सुरभि से मारूत उन्मन
यह तन्द्रा का मृदुल आवरण।"

इन पंक्तियों में प्रकृति का कोमल पक्ष प्रकट हुआ है तो प्रकृति का विराट एवं भयावह पक्ष भी कवि की वाणी में साकार हुआ है—

"झपक रहा लाख-लाख आँख वाला काला नाग आसमान।
ऊँघ रहा बेसुध गेंडुरी मार धरती का अंधा अज़गर अजान।।

इसमें कवि ने नक्षत्र खंचित नभ को लाखों आँखों वाले काले नाग के रूप में तथा तिमिर मग्न निस्तब्ध धरती को कुंडली मार बेसुध पड़े हुए अज़गर के रूप में चित्रित किया है। कवि ने प्रकृति के विभिन्न रूपों का अंकन "पलायन" की कविताओं में किया है।

कवि प्रकृति में अपनी प्रेयसी का आभास पाते हैं और उद्दीप्त होने की चेष्टा करते हैं—

"मचलता, सुमन से हँसी-खेल करता, मलय पवन चलता।
पवन में सुरभि साँस तेरी सुनाती हृदय की कहानी।
मिली आज के दीप्त नभ में तुम्हारे दृगों की ललाई।
मृदुल उंगलियों के परस से किरण ने दबी सुधि जगाई।।"

कविवर बैरागी ने प्रकृति के मानवीकृत रूपों का अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया है। मृत्यु को एक नर्तकी के रूप में प्रकृति के माध्यम से निम्नांकित पंक्तियों से दर्शाया गया है–

"मृत्यु नाचती विश्व-कमल पर
अनस्तित्व-सागर के जल में
जीर्ण-शीर्ण दल गिरते झर-झर!
उसके कंकण क्वणित गगन में
नूपुर मुखर तरंग-पतन में
क्षितिज-व्याप्त-तम-अवगुंठन में
छिप-छिप निज उन्मत्त हर्ष से
झूम रही प्रति पल बल खाकर!"

बैरागी ने मानव और प्रकृति का पृथक अंकन करते हुए भी उन दोनों के विलक्षण सौंदर्य का चित्रण किया है। प्रकृति पर अनेक मानवीय क्रिया-कलापों का आरोप कर उन्होंने उसे सजीव एवं प्रभावोत्पादक बना दिया है। मनुष्य और प्रकृति के सौंदर्य के साथ उन दोनों के संश्लिष्ट सौंदर्य का अंकन बैरागी की अपनी विशिष्टता है।

भाव या रस

कविवर बैरागी अत्यन्त भावुक कलाकार हैं। उनकी भाव-परिधि अत्यन्त विस्तृत है। उनका हृदय निरन्तर किसी न किसी अदम्य भावधारा का रंगस्थल बना हुआ है। बैरागी की कविता में भावोत्कर्ष के परिणामस्वरूप निष्पन्न अनेक रसों का साक्षात्कार हो जाता है, जिनमें शृंगार, करूण, शांत, बीभत्स, वीर और अद्‌भूत रसों का क्षमावेश हुआ है। बैरागी जी की कविता में शृंगार के संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों को वाणी मिली है। संयोग की अपेक्षा वियोग को ही अधिक प्रधानता मिली है। कवि के मिलन शृंगार की कुछ पंक्तियों में रस छलकने लगता है–

"केश-पाश का मधु-परिमल भर
उन्मन वायु चल रही लद कर

दीर्घ श्वास के एक प्रलोभन से
मन को किस तरह बचाऊँ?"

★ ★ ★

मैंने जग के नग्न सत्य से हो विरक्त मुँह फेर लिया,
तेरे अंधरों का वह रक्तिम, मादक आसव पान किया।।"

बैरागी की कविता का वियोग शृंगार अत्यन्त उदात्त तथा प्रभावशाली है। उनकी कविता में पीड़ित मानवता के प्रति करुणा दिखाई देती है। कवि की सहानुभूति एवं अनुकंपा निम्नांकिन पंक्तियों में स्पष्ट लक्षित होती है—

"रात के मैले आँचल बीच सड़क की पटरी पर सिर टेक,
क्षुधा की दुस्सह पीड़ा भूल मिटा चिंता की काली रेख
अभागे सोते रहे असंख्य नींद की गुदड़ी में लिपटे।"

इन पंक्तियों में पीड़ित एवं शोषित मानवों के प्रति असीम करुणा व्यंजित हुई है।

बैरागी की कविता में बीभत्स रस को एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। हिन्दी के वहुत कम कवियों में यह रस देखने को मिलता है। बीभत्स को रस दशा तक पहुँचाने की महान क्षमता कवि की पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

"इन अनन्त निर्जीव विश्व की प्राणहीन लम्बी काया में
जीवन-कीट बिलबिलाते हैं दुर्गन्धित मृति की छाया में।"

★ ★ ★

"क्षितिज का फटता गर्भ कठोर निकलता रक्तारण रवि-पिंड
गुदड़ियों से रंग जाते मेघ, फूट चलती शोणित की धारा।"

प्रथम उद्धरण में जगत रूपी शव के शरीर में, दुर्गन्धपूर्ण मृत्यु की छाया में जीवित मानव-कीटों के बिलबिलाने का चित्र मन में जुगुप्सा उत्पन्न करता है। द्वितीय उद्धरण में क्षितिज रूपी नायिका का गर्भपात होना, रक्तरंजित रवि-पिंड का निकलना, रक्त से भीगी गुदड़ियों के समान मेघों का रक्ताभा से भर जाना और शोषित के समान लाली की धारा का बहना आदि "बीभत्स" का पोषण कर देते हैं।

बैरागी की कविता में उत्साह प्रधान वीर रस की भी सुन्दर योजना हुई है। इस दृष्टि से उनकी "विद्रोह कर", "जागृतिगान", "प्रकाश की पुकार" आदि कविताएँ विशेष उल्लेखनीय है।

बैरागी की कविता में तीव्र भावोद्रेकजन्य रसानुभूति सर्वत्र प्राप्त होती है। कवि ने अधिकांश रसों को अपनी कविता के माध्यम से वाणी प्रदान की है।

कल्पना और विचार

बैरागी एक कल्पनाशील तथा सौन्दर्योपासक कवि हैं। उनकी प्रतिभा ने जहाँ मानव-जीवन के कठोर यथार्थ को सशक्त रूप में व्यक्त किया है, वहाँ दूसरी ओर उनकी कल्पना-शक्ति ने सौन्दर्य-गगन में उन्मुक्त विहार किया है। वास्तव में काव्य का प्राण-तत्व तथा काव्य-सत्य की आधारशिला कल्पना ही है। कविवर बैरागी ने अपनी कल्पना के सहारे विभिन्न सौंदर्य बिम्बों का रूपांकन सजीव रूप में किया है। कवि की सौंदर्य-विषयक कल्पना के प्रमुख आधार मानव जगत और प्रकृति हैं। बैरागी ने मानवीय सौंदर्य के विधान में अपनी कल्पना शक्ति का परिचय दिया है। कवि की प्रयेसी की आँखों के प्रभाव को निम्नांकित बिम्ब सशक्त रूप में व्यक्त करता है–

"कभी किसी के नील नयन युग
प्रलय-जलधि से छा लेते जग
मन की नैया करते डगमग
कभी किसी की चितवन भर से हरा-भरा संसार किया था।"

कवि की कल्पना, कुमुद में रमणी के सौन्दर्य मंडित मुख का साक्षात्कार कराती है–

"कुछ गीली ढ़ीली सी अलकें ललकीं, ललित भाल पर बिखरीं,
उषा-छवि के सवर्ण-निकष पर, विरल तमो-रेखा-सी निखरीं।
आज तुम्हारे लोल कपोलों पर, मादक अरुणोदय छाया,
मत्त लालसा की घाटी में, धूप-छाँह-सी मोहक माया।"

बैरागी की कल्पना नारी सौंदर्यांकन में ही अत्यंत रमती दिखाई देती है। कवि नश्वर मानवीय सौंदर्य के साथ-साथ प्रकृति के स्थायी सौंदर्य को अपनी कल्पना के रंग में रंग कर व्यक्त करते हैं। प्रकृति के सजीव चित्रण में उनकी कल्पना सक्रिय

दिखाई देती है। कवि "कल्पना के प्रति" शीर्षक कविता में प्रकृति सौन्दर्य के माध्यम से कल्पनाजन्य सौंदर्य का विधान करते हैं। कवि कल्पना की विविध छटाओं का अंकन इन पंक्तियों में करते हैं–

"नैश-हृदय के श्याम क्षितीज पर प्रगटित तू पावन-प्रत्यूष!
मृत-तम के अविदित कोनों में ढ़ाल रही प्रकाश-पीयूष।
"जीवन-जलधि-जागरण-जप के गुरू-गंभीर फेनिल कल्लोल!
जल-कन्या-मणि-जटित-मुकुट के रूचिर-रत्न की कांति अमोल!
नव-नक्षत्र-कुसुममय निशि के केशों की मधु-गंध हिलोर!
अपने शीतल सुखद-स्पर्श से छूती विश्व-पलक के छोर!"

बैरागी की नव नवोन्मेषिणी कल्पना मनोज्ञ सौंदर्य के विधान में सक्षम दिखाई देती है। कवि की कल्पना नग्न एवं शुष्क वस्तुओं को भी सौंदर्य मंडित बनाने में समर्थ हुई है–

"क्यों बैठा तू शीश झुकाए,
जीवन के जागृत श्मशान में आशाओं को चिता जलाए!

★ ★ ★

तुझसे थोड़ी ही दूरी पर,
नैश तिमिर का गर्भ चीरकर
बाहर आने को संघर्षण,
करता युग-शिशु प्रसव-वेदना की मरोड़ से स्तब्ध दिशाएँ।"

कवि की कल्पना जड़ वस्तुओं को भी आधार बनाकर अद्भुत सौंदर्य की सृष्टि करने में समर्थ हुई है। बैरागी निर्जीव ठूँठ में विलक्षण सौंदर्य का अनुभव करते हैं और उसको स्वप्न-चित्रों के समान साकार करते हैं–

"मैंने देखा एक ठूँठ वह!
खड़ा रहा वह शून्य डगर पर
किसी ध्वस्त वैभव का खंडहर!
जग की मतवाली हलचल से,
हो विरक्त ज्यों गया रूठ वह।"

बैरागी की कल्पना में कलागत सौंदर्य को भी वाणी मिली है। यह सौंदर्य मनोजगत का सौंदर्य है, जो कल्पना प्रेरित होकर बाह्य जगत के माध्यम से व्यक्त होता है।

बैरागी की कल्पना में भारी वैविध्य है। वह सृष्टि की प्रत्येक वस्तु को अपनी काल्पनिक लपेट में ले लेती है। कल्पना की स्पष्टता, सूक्ष्मता, विराटता, वर्णनात्मकता तथा सौन्दर्य प्रवणता के आधार पर बैरागी को आधुनिक हिन्दी कविता के सर्वोच्च कवियों के समकक्ष ठहराया जा सकता है।

बैरागी एक प्रबुद्ध चिंतक एवं विचारक है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्होंने अपने अमूल्य विचार व्यक्त किये हैं। मानव-जीवन के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विषयों पर कवि ने अपने सूक्ष्म एवं निश्चित विचार व्यक्त किये हैं।

बैरागी की राजनैतिक विचारधारा किसी प्रांत या देश तक सीमित नहीं है, अपितु वह सम्पूर्ण विश्व को अपनी परिधि में ले लेती है। कवि मानव जाति की चिरन्तनता में विश्वास करते हैं और मनुष्य समाज का ध्वंस करने वाले युद्धोन्माद का अंत करना चाहते हैं। विश्व युद्ध से आतंकित मनुष्य को शांति का आश्वासन देना चाहते हैं। कवि भयंकर अस्त्रों के भार से कराहने वाले संसार को, जिसमें युद्धोन्मादी मनुष्यों के सिरों से खेलने की चेष्टा करते हैं, शांति का आश्वासन देते हुए, महान मानव-समाज की सुरक्षा का संदेश देते हैं। कवि को विश्व-मानव की मंगलकारी आस्था पर अटल विश्वास है–

"विक्षुब्ध विश्व-सिन्धु से विनाश की पुकार है।
जगत सकल कराहता भयंकरास्त्र भार से,
पिशाच खेल खेलते मनुष्य-मुंड हार से,

★ ★ ★

मनुष्य यह अजेय है, मनुष्य यह महान है
निकट निशांध-गर्भ में छिपा हुआ विहान है।।"

कवि समाज में अन्याय एवं भ्रष्टाचार के प्रबल विरोधी हैं। मानव समाज को कृत्रिम व्यवधानों से बाँटने वाले जाति, धर्म आदि सामाजिक इकाइयों को मानवता-विरोधी तत्वों के रूप में स्वीकार करते हैं–

"देख, विस्तृत वह कारागार, जिसे कुछ कहते हैं संसार,
और जिसकी हरेक दीवार, मनुजता पर दुस्सह ललकार,

★ ★ ★

युगों से सहते अत्याचार हो उठा जग का जीवन भार,
युगों की पाप-कथाओं से लदी चलती झुक भीत बयार!"

कवि निस्सीम स्वतंत्रता के समर्थक हैं। उनका विश्वास है कि किसी प्रकार के बन्धन, मनुष्य के उन्मुक्त विकास में बाधक है। कवि ने स्वयं अपने वैयक्तिक जीवन में भी बंधनों का विरोध किया है–

"मैं अनंत का पथिक, बन्धनों में न बंधा ही रह जाऊँगा।
अपने विहरण में सीमा का अत्याचार न सह पाऊँगा!"

कवि जन्म-मरण के सागर-संगम-सीमा के बंधन को पार कर जाने की आकांक्षा करते हैं–

"जीवन और मृत्यु के सागर जिस सीमा पर हुए सम्मिलित,
उस सीमा को पार करूँगा मैं लघुता का बन्दी पीड़ित।"

कवि संसार को एक विस्तृत कारागार मानते हुए उसकी दीवारों को तोड़ने का संदेश देते हैं। बैरागी की आर्थिक विचारधारा प्रगतिवादी है। उन्होंने पीड़ित, शोषित, पददलित, प्रताड़ित, अन्नार्तों के अधिकारों का प्रबल समर्थन किया है। आर्थिक विषमता भरे हुए पूँजीवादी समाज की असंगति उनकी पंक्तियों में साकार हुई है। कवि ऐसे सांस्कृतिक संसार की कल्पना करते हैं, जो "जरा-मरण-अस्तित्व-समस्या-शोक-हीन विगत-विकार" है। कवि की विचारधारा प्रायः दार्शनिक हो जाती है। और वे द्वंद्वों से रहित निश्चल संस्कृति के निर्माण में योग देते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि कवि की विचारधारा ने मानव जीवन के अधिकांश क्षेत्रों को अपनी परिधि में ले लिया है।

अभिव्यंजना-शिल्प

बैरागी एक भावुक कवि होने के साथ-साथ एक उत्कृष्ट कोटि के कलाकार हैं। कवि की भावना अथवा कल्पना उनकी भाषा में साकार हो गयी है। कवि की भाषा-शैली प्रवाहमयी, प्रांजल और प्रौढ़ है।

भाषा, भावों की वाहिका होने के कारण बैरागी ने उसको अत्यन्त प्रभावोत्पादक बना दिया है। उनकी भाषा सहज, सजीव, सशक्त, मार्मिक एवं भावानुकूल है। वैरागी की वाक्य-रचना की चतुराई का और शब्द-क्रीड़ा का पूरा शौक है। उनकी भाषा में संस्कृत के ही नहीं अपितु अरबी, फ़ारसी के असंख्य शब्दों का भी यथोचित प्रयोग पाया जाता है। कवि के पास एक अत्यन्त व्यापक शब्द-भंडार है जिसमें भाव सहज ही में अनुस्यूत होते जाते हैं। उनकी भाषा अत्यंत प्रौढ़ खड़ी बोली है, जिसमें चित्रात्मकता, लाक्षणिकता, मसृणता, आलंकारिकता और प्रतीकात्मकता कूट-कूट कर भरी हुई है।

बैरागी का हिन्दी के छन्दों पर असाधारण अधिकार है। उन्होंने भाव और रस के अनुसार छन्दों का विधान किया है। उन्होंने अपनी कविताओं में अधिकतर मात्रिक छन्दों का उपयोग किया है और कहीं-कहीं संस्कृत के दंडकों के आधार पर वर्ण-वृत्तों व मुक्त-छन्दों का भी प्रयोग किया है। उन्होंने अपने गीतों व प्रगीतों में वीर, मत्त सवैया, शृंगार राग, सार, चौपाई, विहंग आदि मात्रिक छन्दों का प्रयोग अत्यंत विस्तार के साथ किया है।

हिन्दी काव्य की सभी अभिव्यंजना-प्रणालियों पर बैरागी का सशक्त अधिकार है। कवि की भावना के अनुकूल उनकी भाषा कोमल और प्रांजल बनती गयी है। कहीं-कहीं ऐसा लगता है कि कवि के कलात्मक संकेतों पर भाषा नाचती-थिरकती दिखाई देती है। किसी भी सूक्ष्म भाव को कवि आसानी से अभिव्यक्त करने में सफल हुए है। काव्य-शिल्प की दृष्टि से वैरागी के कलाकार को हिन्दी के किसी भी महाकवि के समक्ष रखा जा सकता है।

बैरागी एक सृजनात्मक प्रतिभा-सम्पन्न कवि एवं कलाकार हैं, जिनका आधुनिक हिन्दी कविता की सभी प्रवृत्तियों पर पूर्ण अधिकार है। स्वच्छन्दतावाद, प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद की प्रवृत्तियाँ उनकी कविताओं में दिखाई देती हैं। उनकी कविता में मानव और प्रकृति, व्यक्ति और समाज, यथार्थ और कल्पना, सत्य और स्वप्न, विचार एवं अनुभूति का सुन्दर सामंजस्य प्राप्त होता है। निस्संदेह यह कहा जा सकता है कि आन्ध्र के हिन्दी कवियों में बैरागी अत्युन्नत स्थान के अधिकारी हैं और आधुनिक हिन्दी साहित्य के महान कवियों के पार्श्व में उनका भी स्थान है।

❑ ❑

9वीं सदी का महान कश्मीरी इंजीनियर, सुय्या

अशोक जेरथ

9वीं सदी में कश्मीर पर एक महान सम्राट शासन करता था जो बाद में अवंतीवर्मन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके राज काल में प्रजा खुश थी। चारों ओर खुशहाली का वातावरण था। एक बार बरसात ज्यादा होने के कारण झील पद्मसर, वर्तमान झील वूलर, का जल स्तर इतना बढ़ गया कि आसपास की जमीनें उसमें डूब गई। ये इतनी जरखेज जमीनें थी कि आधे कश्मीर को खाना मुहैय्या करती थी। अनाज की कमी की वजह से एक खारी, एक माप जो वैदिक काल से चला आ रहा था, चावल की कीमत दो सौ स्वर्ण मुद्राओं से बढ़कर 1050 स्वर्ण मुद्राओं तक चली गई थी परिणामतः सारे राज्य में हाहाकार मच गया। बाहर से भी अनाज मंगवाने पर सम्राट को भविष्य की चिंता ने घेर रखा था कि यदि बाढ़ के पानी से धरा मुक्त नहीं की गई तो राज्य में अकाल पड़ जाएगा और उसके राज्य को खुशहाल देखने के सपने मात्र सपने ही रह जाएंगे। सम्राट ने देश भर से चुनींदा विद्वानों और इंजीनियरों की एक सभा बुलवाई और उनसे इस समस्या का निदान पूछा पर किसी के पास कोई हल नहीं था। सभी एक मत थे कि जब तक जल स्तर घट नहीं जाता कुछ नहीं किया जा सकता। पर जल स्तर घटने के

स्थान पर बढ़ता ही जा रहा था और उस पर तुर्रा यह कि गर्मी के बढ़ने के साथ-साथ पहाड़ों पर पड़ी बर्फ पिघलना शुरू हो चुकी थी जिसके कारण जल स्तर और ऊंचा होने लग पड़ा था। सम्राट जैसे बेबस हो चुका था कुछ भी करने में अपने को अवश पा रहा था। उसने अपने सारे राज्य में यह ढिंढोरा पिटवा दिया था कि जो कोई भी इस समस्या का समाधान बताएगा उसे न केवल पुरस्कृत किया जाएगा अपितु राज्य में एक ऊंचा दर्जा भी दिया जाएगा। पर सभी हैरान थे कि सम्राट को समझ क्यों नहीं आ रहा! बिना जल स्तर कम हुए कैसे समाधान संभव था! सारे नगर में एक बात फैल गई थी कि जो कोई भी इस समस्या का समाधान निकालेगा उसे मंत्रीपद दिया जाएगा। उन दिनों एक गरीब अध्यापक यह कहते हुए सुना गया था कि इस बाढ़ का निदान केवल उसके पास ही है पर उसके पास साधनों की कमी है और अगर उसे साधन मुहैय्या किए जाएं तो वह न केवल बाढ़ से राज्य को छुटकारा दिलाएगा अपितु पहले से भी ज्यादा ज़रखेज ज़मीन पानी से निकाल कर राज्य प्रशासन को सौंप देगा। लोग, विशेषतया, मंत्रीगण उसका मजाक उड़ा रहे थे कि बड़ा आया निदान करने वाला पहले अपने आप को तो सम्भाले। पर जब बात सम्राट के कानों तक पहुंची तो उसने उसे बुलवा भेजा और इस समस्या का समाधान उससे पूछा तो उसने सीधे से इसका उत्तर न देकर सम्राट से स्वर्ण मुद्राओं से भरी हुई थैलियां मांगी। मंत्रियों एवम् दूसरे अहलकारों ने उसे धोखेबाज़ कहा और राजा से प्रार्थना की कि यह व्यक्ति पैसों का दुरोपयोग करना चाहता है जबकि आगे ही राज्य में अकाल जैसी स्थिति है अतः इसे दण्डित किया जाना चाहिए। पर सम्राट को उसके आत्मविश्वास से बल मिल रहा था चुनाचे उसने अपने कोषागार से स्वर्ण मुद्राओं से भरी अनेक थैलियां उसके सपुर्द कर दीं। सुय्या ने वे सभी स्वर्ण मुद्रायें मिट्टी के मटकों में उलट कर एक नाव में रखीं और नाव को खेता हुआ नन्दक गांव, जो कि पानी में डूब चुका था, की ओर बढ़ा और पानी में उन मुद्राओं को बिखरा दिया। वह नाव को खेता जाता और मुट्ठी भरकर स्वर्ण मुद्राओं को पानी में फेंकता जाता था। जब बात मंत्रियों तक पहुंची तो वे भड़क उठे और राजा से प्रार्थना की कि इसके पहले कि वह पागल आदमी खजाने को खाली कर दे उसे रोकना चाहिए पर सम्राट यह सब कुछ बड़ी दिलचस्पी के साथ देख रहा था। सुय्या ने इसी प्रकार मुट्ठी भर स्वर्ण मुद्रायें यक्षधारा नामक जल में डुबे हुए गांव में भी फेंक दी और साथ में ढिंढोरा पिटवा दिया कि इन स्वर्ण मुद्राओं को कोई भी जल

में से निकाल सकता है और जो कोई भी इन मुद्राओं को बाहर निकालेगा वे उसकी होंगी। फिर क्या था भूखे लोग पानी में कूद पड़े और टोकरियों में पत्थर कंकर आदि भर कर किनारों की ओर फेंकने लगे ताकि उनमें से वे स्वर्ण मुद्राओं को अलग कर सकें। जैसा सूय्या ने सोचा था बिल्कुल वैसा ही हुआ। हज़ारों की संख्या में लोग टोकरियां भरकर बाढ़ के पानी में से मलबा बाहर निकालने लगे और जल का स्तर नीचे होना शुरू हो गया था। यक्षधारा के पास असल में वितस्ता, वर्तमान झेलम, की धारा को बड़े-बड़े पत्थरों ने अवरुद्ध कर दिया था परिणामस्वरुप वितस्ता का जल अपना रास्ता बदल चुका था और जल आस-पास के खेतों में भर गया था। भूखे लोगों ने स्वर्ण मुद्राओं की तलाश में पत्थरों और मलबे को जब बाहर फेंक दिया तो वितस्ता का जल अपनी राह पा गया और पानी में डूबी हुई धरा अपने आप उभर आई। इस ओर दुबारा कहीं रुकावट न पड़े सुय्या ने वितस्ता के किनारों को और ऊंचा कर दिया, बांध की तरह और जल की धारा को रोक कर अच्छी तरह सफाई की गई ताकि कहीं पर भी दुबारा अवरोध पैदा न हो सके और जल धारा बाद में बड़े वेग के साथ बहने लगी। इस प्रकार न केवल डूबी हुई धरा को पानी से निजात दिलाई अपितु सदा के लिए वितस्ता के किनारों पर बांधनुमा मोटी दीवारें चढ़ा दी गईं। जो धरा जल स्तर से बाहर निकली वह अति उपजाऊ होकर सोना उगलने लगी और इससे भी आगे सुय्या की सोच दौड़ रही थी कि कभी भविष्य में भी ऐसी विपत्ति का सामना न करना पड़े उसने मुख्य धारा में से अनेक छोटी-छोटी धारायें निकालीं ताकि सिंचाई का भरपूर प्रबन्ध किया जा सके। परिणामस्वरूप खुशहाली लौट आई खेत लहलहाने लगे और फसल कई गुना होने लगी। चावल अब 1050 प्रति खारी से घटकर 200 स्वर्ण मुद्रा प्रति खारी और अगले वर्ष इससे भी घटकर 36 स्वर्ण मुद्रा प्रति खारी बिकने लगा।

यह सुय्या कौन था! इतिहास इसके बारे में पूर्णतया सजग नहीं। मात्र एक किंवदंतियों में एक घटना का उल्लेख मिलता है कि सुय्या नामक एक सफाई वाली महिला को एक नया मटका मिला था जिसका ढक्कन खोलने पर एक अति आश्चर्यजनक घटना घटी कि भीतर एक नवजात शिशु पड़ा दुनिया से बेखबर अपना अंगूठा चूस रहा था। उसकी सुन्दर देहयष्टि और कमलाकार आंखें देखकर उसे लगा कि यह बालक किसी ऊंचे वंश का है परन्तु किसी मजबूरी के कारण उसकी मां ने उसे त्याग दिया था। सुय्या ने उस बालक को किसी अन्य दासी को

सौंपकर, जिसकी छाती में दूध था, पालने के लिए कहा। स्वयं उसके लिए पैसे के जुगाड़ में लग गई और मन ही मन उसने यह निश्चय कर लिया था कि जिस ऊंचे वंश का यह बालक है वह उसे उसी स्तर तक ले जाएगी। चुनाचे घर की अनेक परेशानियों के बावजूद, विरोध के चलते हुए उसने इस बालक की शिक्षा का उचित प्रबन्ध किया। बालक स्वयं भी खूब होनहार था। वह स्वयं तो मन लगा कर पढ़ता ही था अपितु अपने साथियों को पढ़ने में सहयोग भी देता था। धीरे-धीरे अपनी विद्वता और अर्जित ज्ञान के माध्यम से उसने अपने साथियों में एक विशिष्ट स्थान बना लिया था। वह वाक्पटुता में भी अग्रणी था। यह उन्हीं दिनों की बात है जब कश्मीर की घाटी को एक भयंकर सैलाब ने ग्रस लिया था और वह अपने साथियों से कहता रहा था कि उसके पास इस मुसीबत से छुटकारा पाने का हल है और उसने इसे कर दिखाया था। बस फिर क्या था वह सम्राट का विश्वास पात्र हो गया था। उसने अनेक योजनायें तैयार कीं और बड़ी से बड़ी नदी के बहाव को वदल दिया। कल्हण ने अपनी राजतंरगिणी में उसे एक ऐसे सपेरे की संज्ञा से नवाजा है जो नदियों रूपी नागिनों को अपने संकेत पर नाचने के लिए मजबूर करता था।

वितस्ता का बांध बांधने के बाद सुय्या ने सागर की तरह गहरी और बड़ी झील पद्मसर, वूलर, की ओर ध्यान देना शुरू किया। यहां से वितस्ता वूलर से निकलती है। उसके दहाने पर सुय्या ने एक नगर का निर्माण किया जिसे अपनी माता के नाम पर सुय्यापुर की संज्ञा दी। आजकल इसे सौपुर के नाम से जाना जाता है। लोग वर्षा पर ही निर्भर न रहें अपितु सारा वर्ष सिंचाई की सुविधा रहे इसके लिए घाटी मे चारों ओर छोटी-छोटी नहरों का जाल बिछा दिया। आज न केवल सिंचाई के लिए इनका उपयोग होता अपितु आवागमन का इन नहरों से अच्छा कोई साधन नहीं है। छोटी-छोटी नावों, जिन्हें शिकारे की संज्ञा से जाना जाता है, पर सामान लादकर इन्हीं नहरों के माध्यम से ले जाया जाता है और लाया जाता है।

सुय्या ने अपनी सोच और नई योजनाओं के माध्यम से इतनी धरा पानी से निकलवाई थी कि लोग सोच भी नहीं सकते थे। सम्राट ने इन नई जगहों पर नए नगर बसाए। वूलर में मछली पकड़ने की मनाही कर दी गई ताकि वह गई मछली की पूर्ति हो सके। इस प्रकार न केवल एक वर्ष में ही मछली की पूर्ति हो गई अपितु दूसरे वर्ष सम्राट ने स्वयं मछली पकड़ कर इस आदेश को वापिस ले लिया चूंकि

अब लगभग दुगुनी मछली हो चुकी थी। सुय्या ने अनेक नए गांव बसाए जिनमें से जयसीला और सुय्या कुण्डला प्रमुख हैं। अब जब भी कभी कोई प्राकृतिक आपदा आती तो राजा तथा प्रजा सुय्या की ओर देखने लगते थे। आज भी झेलम के किनारे बना बांध जिसे बन्ड कहते हैं सुय्या की याद ताज़ा कर देता है।

अपने अंतिम समय में उसने त्रिपुरेश की पहाड़ी पर प्रवास किया जहां ज्यश्तेश्वर का पवित्र स्थान है। देह छोड़ने से पहले सुय्या ने घुटने टेक कर दोनों हाथ जोड़े और ईश्वर का मनन किया और श्रीमद्‌भगवत् गीता का पाठ सुनते हुए देह त्याग दी मानों उसे अपने अंत का पता था।

सुय्या का एक और स्वप्न था कि पशुओं, पक्षियों और निरीह जंतुओं की रक्षा के लिए और उनके अधिकारों की बात करने के लिए लोग सामने आयें। शायद यही कारण था कि 9वीं शताब्दी में पक्षियों के लिए हस्पताल बनाए गए और जंगली जीव जंतुओं की सहायतार्थ संस्थायें सामने आईं। आज जो भी संस्थान इस ओर कार्यरत हैं वे इसका श्रेय सुय्या को दे या न दें परंतु यह अटल सत्य है कि सर्व प्रथम सुय्या ने ही इस ओर हमारा मार्गदर्शन किया था। आज भी कश्मीर में सुय्या का नाम बड़े गौरव के साथ लिया जाता है और अनेक काव्य संग्रहों एवम् कहानियों में सुय्या एक सशक्त मिथक के रूप में उभरा है।

❑ ❑

शून्य और करुणा में बसा चराचर

राधावल्लभ त्रिपाठी

थाईलैंड पहुँच कर सबसे पहले थाई भाषा के जिस शब्द से मेरा परिचय हुआ वह था सून। सून का अर्थ है केन्द्र। मुझे बैंकाक के सिल्पाकॉर्न विश्वविद्यालय में स्थित संस्कृत अध्ययन केन्द्र में अतिथि आचार्य के रूप में काम करना था। केन्द्र के निदेशक ने पहले ही दिन मुझे सारी व्यवस्थाएँ समझाते हुए कहा था कि नीचे गेट मैन से कभी मुझे सेंटर की चाभी माँगना पड़े तो कहूँ—सून संस्कृत। मेरे सहयोगियों ने उस समय थाई के 'सून' का मतलब 'केन्द्र' बताया था।

बैंकाक पहुँचने के कुछ दिन के भीतर ही मैंने थाई भाषा सीखने का प्रयास किया। थाई भाषा तो मेरे पल्ले अभी भी नहीं पड़ सकी, पर इस प्रयास में मैंने थाई लिपि ज़रूर सीख ली। अब मैं अंग्रेजी में 'संस्कृत स्टडीज सेंटर' के साथ थाई लिपि में लिखा अपने केन्द्र का नाम पढ़ लेता हूँ—शून्य संस्कृत शिक्षा। थाई में तालव्य शकार और मूर्धन्य षकार लिखे तो जाते हैं, पर उनका उच्चारण दन्त्य (स) के रूप में ही किया जाता है। शब्द के अन्त में आये यकार का अक्सर उच्चारण नहीं किया जाता। इसलिये लिखा जाता है 'शून्य' और बोल जाता है 'सून'। लिखा 'शिक्षा' ही गया है, पर उच्चारण 'सिक्सा' किया जाता है।

अब तो अनेक शिक्षा केन्द्रों या संस्थानों में जहाँ-जहाँ जाना होता है, नाम पट्टों या सूचना पट्टों पर थाई लिपि में लिखित इस 'शून्य' का 'सून' से मेरा

सामना अक्सर हो जाता है। भारतीय भाषाओं में 'सैंटर' के लिये जहाँ केन्द्र 'शब्द' का प्रयोग होता है, थाई भाषा में उसके लिये संस्कृत मूल का शब्द अपनाया गया, पर 'केन्द्र' नहीं, 'शून्य'। संस्कृति और चिन्तन की परम्पराएँ किस तरह भाषा पर असर डालती हैं, उसका यह उदाहरण है। थाईलैंड एक बौद्ध राष्ट्र है। बौद्ध धर्म और दर्शन यहाँ के जीवन में शताब्दियों से रमे हुए हैं। जिस दर्शन में शून्य को ही सृष्टि का केन्द्रबिन्दु और परमतत्त्व माना गया हो, वहाँ केन्द्र के समतुल्य शब्द की बात होते ही सबसे पहले 'शून्य' शब्द लोगों के दिमाग में आये, यह स्वाभाविक था।

बैंकाक पहुँचने के दो चार दिन के अन्दर ही एक ऐसा ही दूसरा शब्द मेरे कानों में पड़ा--करुणा। अब तो रोज ही किसी न किसी प्रसंग में करुणा की पुकार मैं सुनता हूँ, अलबत्ता णकार का उच्चारण नकार के रूप में होने और मध्य के उ को विलम्बित में खींच दिये जाने से 'करुना' के रूप अधिक मिठास के साथ। रेलवे स्टेशनों पर घोषणाओ में, टेलिफोन या बिजली के बिल भरते समय प्रसारित की जाने वाली सूचनाओं में, किसी को टेलिफोन करते समय लाइन खाली न होने पर प्रतीक्षा करने के निर्देश के साथ सबसे पहले वाक्य में जो शब्द सुनाई देता है, वह है करुणा। हिन्दी में जिस तरह 'कृपया' की कृपा सर्वप्व्यापी है, उसी तरह यहाँ 'करुणा' सर्वत्र छाई हुई है।

थाई लिपि सीखने के बाद बस में बैठे हुए या सड़क पर चलते हुए मैं दुकानों पर या भवनों पर लगे नामपट्टों, सूचनापट्टों या इश्तिहार की तख्तियों की इबारत पढ़ने का प्रयास करने लगा हूँ। अक्सर बाजार में चलते हुए माथे के ऊपर से जाते हाई वे के पास या चौराहों पर लगाये तख्तों में बड़े-बड़े अक्षरों में जो इबारत लिखी है, उसे मैं पढ़ सकता हूँ--'चराचर'। यह तो मैं समझ जाता हूँ कि यह भी संस्कृत या पालि की पदावली का दैनिक जीवन में अर्थादेश है। हो सकता है इसका मतलब चलने और न चलने से हो।

उस दिन सिल्पाकॉन् विशविद्यालय में अपने सहयोगी डॉ. बमरूङ् से मैंने पूछ ही लिया--थाई में 'चराचर' का मतलब क्या होता है ?

डॉ. बमरूङ् भारत में छह साल रहे चुके हैं और अच्छी हिन्दी बोलते हैं। उन्होंने कहा--थाई में 'चराचर' कोई शब्द नहीं होता।

मैंने बताया कि सड़कों के ऊपर लगे बोर्ड्स या चौराहों के बीच के बोर्डो पर मैंने यह इबारत लिखी देखी है। फिर भी वे बूझ न सके। तब मैंने थाई लिपि में चराचर लिख कर उन्हें दिखाया –

– चराचर नहीं, चोनाचोन्! उन्होंने कहा। इसका मतलब ट्रैफिक है--यातायात।

'र' = कार का उच्चारण यहाँ अक्सर 'न' कार में परिवर्तित हो जाता है। नगर शब्द थाई में बहुप्रचलित है। लिपि में वर्तनी 'न-ग-र' ही है। पर कहा जाता है 'नखोन्'। बैंकाक में आने के दो महीने बाद मुझे पता चला था कि बैंकाक को थाई लोग बैंकाक नाम से कम जानते आये हैं। थाई में अधिक प्रचलित इसका नाम है 'क्रुङ्थेप'। क्रुङ् शब्द नगर वाचक है। थेप का संस्कृत में समतुल्य शब्द है देव। अब जब कि मैं थाई लिपि काफी कुछ पढ़ लेता हूँ, कारों के पीछे लगी प्लेट्स पर, बाजारों में जगह-जगह लगे बोर्ड्स पर इस शहर का नाम बाँचता हूँ। पर मैं अपने लिपिज्ञान के आधार पर क्रुङ्देव पढ़ता हूँ। जगह-जगह क्रुङ्थेप महानगर (उच्चारण महानखोन्) की नाम पट्टिकाएँ मैं देखता हूँ। संस्कृत या पालि से थाई में आये अनेक शब्द वर्तनी में तो विशुद्ध मूल रूप में मौजूद हैं, पर उच्चारण में भेद है। बैंकाक आधुनिक नाम है। यह शहर जब बसाया गया था, तो इसकी परिकल्पना देवताओं के शहर के रूप में की गई थी। जहाँ मैं पढ़ाता हूँ, उस विश्वविद्यालय का नाम लिपि में 'शिल्पाकर' लिखा जाता है पर बोला जाता है–'सिल्पाकॉर्न्'। विद्यालय और महाविद्यालय शब्द तो जस के तस लिखित और उच्चरित रूप में यहाँ मौजूद हैं ही।

'शून्य' और 'करुणा' की तरह भाषा में कई प्रकार से एक और शब्द की व्याप्ति दिखती है वह है 'धर्म'। लिपि की दृष्टि से लिखा जाता है धर्म, उच्चारण अवश्य 'धम्म' होता है, जो पालि का सीधा प्रभाव है। सिल्पाकार्न या शिल्पाकर विश्वविद्यालय के निकट ही थम्मासॉट युनिवर्सिटी है। लिपि में जो इसका नाम मैं पढ़ पाता हूँ वह धर्मशास्त्र महाविद्यालय है। यह विश्वविद्यालय मानविकी और विधि की पढ़ाई के लिये जाना जाता है। धर्म और शास्त्र दोनों शब्दों का यहाँ कुछ अर्थादेश हुआ है।

बाजार में घूमते हुए जो दो और शब्द नाम पट्टों पर मेरे पढ़ने में अक्सर आते रहते हैं, वे हैं–'परिषद्' और 'समागम'। पहले का प्रयोग कम्पनी के अर्थ में चलता है, दूसरे का एसोशिएशन के अर्थ में।

बाजार में साइनबोर्ड्स पर लिखी इबारतों के अलावा थाई भाषा की शब्दावली ग्रहण करने का मेरे पास एक जरिया और है—थाई कैलेंडर। यह कैलेंडर मुझे स्थानीय अखबार "बैंकाक पोस्ट" की ओर से भेंट में मिला है। मेरे लिये इस कैलेंडर में यह सहूलियत है कि यह द्विभाषी है, विभिन्न त्योहारों या दिवसों के नाम अंग्रेजी में भी अंकित हैं और उनके ऊपर थाई भाषा में प्रचलित नाम थाई लिपि में।

मैं इस कैलेंडर में अंग्रेजी महीने के साथ थाई लिपि में उन्हीं महीनों के थाइ नाम कुछ इस तरह पढ़ता हूँ—मकरागम, कुम्भ, मीनागम, मेषायन, वृषभागम, मिथुनायन, कर्कटागम, सिंहागम, कन्यायन, तुलागम, वृश्चिकागम, और धन्वागम। थाई में क-घ-ग-घ ये चारों वर्ण लिखे तो पृथक्-पृथक् जाते हैं, पर इनके उच्चारण सम्मिश्र हो गये हैं। जनवरी के पृष्ठ पर महीने का जो नाम मैं अपने लिपिज्ञान के अनुसार 'मकरागम' पढ़ रहा हूँ, उसका उच्चारण 'मोअकराखोम्' जैसा है। दिन के लिये 'वार' यहाँ लिया गया है, उच्चारण वान् या वन् किया जाता है। दिनों के नाम कुछ इस तरह कहे जाते हैं वन्-आथित, वन् चन्, वन् अङ्खन. वन् फुध, वन् फ्रूहत, वन् सूक, वन् सओ। मैं कैलेंडर में थाई में इन्हें पढ़ता हूँ तो लिखा दिखता है—वन् आदित्य, वन्-चन्द्र, वन् अङ्गार, वन्-बुध, वन् बृहस्, वन् शुक्र और वन् सेर। शब्द के अन्त में लिखे यकार का उच्चारण प्रायः नहीं किया जाता, और दकार को प्रायः थकार जैसा बोला जाता है, इसलिये लिखा जाता है 'आदित्य' और बोला जाता है 'आथित'। यही स्थिति चन्द्र के चन् और अङ्गार के अङ्खन होने में है।

संस्कृत और पालि का एक और शब्द जो थाई भाषा में कई रूपों में कई विच्छित्तियों या अर्थछटाओं के साथ संक्रान्त हुआ है, वह है—भाव। सेहत के लिये शब्द है—सुकभाव (सुखभाव)। इसी तरह इस्तिरभाव (स्थिरभाव) और फिभाव (विभाव) शब्द हैं। स्त्री के लिये थाई में लिखा स्त्री ही जाता है, उच्चारण सत्री किया जाता है। पुरुष को भी इसी तरह पुरुष लिखा जाता है, और सज्जन पुरुष के लिये शब्द है सुभावपुरुष।

थाईलैंड अनूठा देश है। पिछले दशकों में इसका जिस तरह तेजी से आधुनिकीकरण हुआ है, वह कभी-कभी चकित कर देता है। पर परम्पराएँ यहाँ जिस तरह सार्थक हो कर फल फूल रही है, वह और भी विस्मयकर है। परम्परा और आधुनिकता की गलबाहीं का एक नतीजा यह दिखता है कि नई चीजों के लिये संस्कृत मूल के शब्द अपनाए गये, निर्मित किये गये और वे लोक व्यवहार में सहज

रूप से खप गये। बैंक को बोलचाल में यहाँ बैंक कम ही कहा जाता है। उसके लिये 'धनागार' शब्द है, जो 'धनाखान' उच्चरित होता है। टेलीफोन के लिये शब्द चलता है 'थोरसप्'। पर मैं पब्लिक टेलीफोन बूथों पर लिखी इबारत पढ़ता हूँ, तो समझ में आता है 'दूरशब्द'। 'वायरलेस' के लिये सर्वत्र 'विथयु' कहा और लिखा जाता है, जो विद्युत का तद्‌भव है। दवाइयों की दुकानों के ऊपर लगी पट्टिकाओं पर अक्सर लिखा मिलता है–खाया (काया); पर भेसज (भेषज), ओषध और आरोग्य जैसे शब्द भी जहाँ तहाँ लिखे हुए मैं पढ़ सकता हूँ। 'वेला' शब्द 'समय' के अर्थ में हिन्दी में छायावादी कविता तक ही ज्यादा प्रचलित रहा, वही वेला शब्द ठीक इसी उच्चारण के साथ समय के अर्थ में थाई लोग बोलचाल में खूब इस्तेमाल करते हैं।

थाई देश में कार्यालयों में और शिक्षा संस्थानों में अवकाश कम ही होते हैं। मई के महीने में ही एक साथ चार दिन छुट्टियों के पड़ गये। आज एक मई है–मजदूर दिवस है। केलेंडर पर मेरी दृष्टि जाती है। उसमें थाई लिपि में विशेष दिवस या अवकाश हर तारीख के साथ अंकित हैं। एक मई वाले खाने में देखता हूँ–थाई लिपि में लिखा हुआ है वन् नरधर्म। लिखा तो शुद्ध नरधर्म ही है, पर उच्चारण नरधम्म होगा। जब श्रम को मानव धर्म के रूप में अंगीकार कर लिया जाय, तो इस तरह का शब्द भी खुद-ब-खुद चल पड़ेगा। हर बार ऐसे किसी शब्द के आविष्कार के साथ थाई भाषा के शब्दों की मेरी कमाई में इजाफा होता रहता है। पाँच मई वर्तमान महाराज का राज्याभिषेक दिवस है। केलेंडर में इसके लिये "कॉरोनेशन डे" के ऊपर थाई लिपि में छपा है–वन् छत्रमंगल। शब्द के अन्त में आने वाले लकार का उच्चारण भी नकार के रूप में किया जाता है, इसलिये मंगल 'मंगन' जैसा बोला जाता है। पर मंगल एक और शब्द है, जो थाई भाषा के अनेक समस्त पदों में जुड़ा दिखता है। 8 मई भी बड़े त्यौहार का दिन है। इस दिन राजा या राजकुमार की उपस्थिति में नगर के हृदयस्थल सनम् लुआङ् में हल चलाने का अनुष्ठान होता है। वैदिक परम्परा में हमारे यहाँ भी साल में एक बार राजा स्वयं खेत में जाकर हल चलाया करते थे। कृषि प्रधान संस्कृति से आया यह पर्व महा नगर में अब बड़े समारोह के साथ आयोजित होता है। कैलेंडर में इसके लिये 'प्लोइंग सरेमनी' के ऊपर थाई में छपा हुआ है वन्–फी-मंगल। 15 मई भी यहाँ का राष्ट्रीय पर्व है–वैशाख पूजा। पूजा शब्द तो खूब व्यवहृत होता है, उच्चारण 'बूजा' जैसा किया जाता है।

बहरहाल एक मई के दिन बाजार लगभग बन्द थे। फुरसत मिलने पर हम लोग सनम्-लुआङ् गये, जहाँ शहर के अधिकांश उत्सव आयोजित होते हैं। सनम्-लुआङ् के मैदान में अच्छा खासा मेला लगा हुआ था। कई तरह के आयोजन एक साथ चल रहे थे और शिरकत करने वाले लागे ज्यादातर कामगार वर्ग के थे। मुझे अठारह साल पहले (पूर्वी) जर्मनी के अपने प्रवास की याद आ गई। उस वक्त वहाँ हॉनेकर की सरकार थी। मैं मई के महीने में वहाँ था। एक मई के दिन बर्लिन के बाजारों में जबरदस्त हंगामा था, नृत्य और संगीत की धूम थी। कुछ ऐसी ही धूम यहाँ थी, फर्क यह कि सनम्-लुआङ् के एकदम नजदीक महाप्रासाद (ग्रांड पेलेस) में नीलम मणि से बनी भगवान् बुद्ध की अद्‌भुत प्रतिमा है, विश्व के आश्चर्यों में एक। और इसके आगे वाट फो है—बुद्ध का वह मन्दिर जिसमें पार्श्वशायी बुद्ध की स्वर्णमण्डित विशालतम प्रतिमा है। मई दिवस का यह समारोह देखते हुए लगा जैसे वह बुद्ध की करुणा के साये में सम्पन्न हो रहा है।

❑ ❑

इंद्रधनुषी प्रकृति एवं संस्कृति से सम्पन्न पड़ोसी देश – मालदीव

सुभाष सेतिया

हिंद महासागर की गोद में बसा द्वीप देश मालदीव अपनी अद्‌भुत प्राकृतिक छटा और मनमोहक समुद्री तटों के लिए सारी दुनिया में विख्यात है। इसे दो बार विश्व का सुंदरतम द्वीप देश घोषित किया जा चुका है। संभवतः यह एकमात्र ऐसा देश है जहाँ वर्ष के किसी भी समय अपनी जनसंख्या से अधिक संख्या विदेशों से आने वाले सैलानियों की होती है। ज़ाहिर है, पर्यटकों को रिझाने के लिए प्राकृतिक सौंदर्य ही काफी नहीं होता। इसमें देश के जन-जीवन, लोक-व्यवहार, सामाजिक समरसता व शांति और सांस्कृतिक उत्कर्ष का भी समान योगदान रहता है। भारत के दक्षिण में बसे इस द्वीप देश के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन के अध्ययन से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि संसार भर के पर्यटकों के आकर्षण का केंद्र बनने के लिए किसी देश में भौतिक एवं प्राकृतिक भव्यता के साथ-साथ नैतिक श्रेष्ठता एवं सांस्कृतिक उत्कर्ष होना भी आवश्यक है।

मालदीव भौगोलिक दृष्टि से छोटा-सा देश है जिसके कुल 1190 द्वीपों में से केवल 19 द्वीपों पर आबादी है। 90,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल वाले इस देश की आबादी लगभग पौने तीन लाख ही है। राजधानी माले सबसे अधिक विकसित

द्वीप है जहाँ की आबादी 75,000 है। मालदीव का मुख्य धर्म इस्लाम है। लगभग सभी मालदीव वासी सुन्नी मुसलमान हैं किंतु इसने अपने आपको इस्लामिक देश घोषित नहीं किया है। मालदीव की एक अन्य उल्लेखनीय विशेषता यह है कि यहाँ की साक्षरता दर 98.2 प्रतिशत है जो संभवतः एशियाई देशों में सबसे अधिक है। धिवेही यहाँ की राजभाषा और राष्ट्रीय भाषा है जिसकी लिपि अरबी लिपि से मिलती-जुलती है। राजकाज और सामान्य व्यवहार में धिवेही भाषा ही इस्तेमाल की जाती है परन्तु व्यावसायिक कार्यों और पर्यटन गतिविधियों में अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग होता है।

मालदीव के सांस्कृतिक जीवन में आधुनिकता और परंपरा का अनूठा संगम देखा जा सकता है। पर्यटन यहाँ का मुख्य व्यवसाय होने के कारण पश्चिमी ढंग की आवास एवं खानपान की सुविधाओं का काफी प्रचलन है। परन्तु यह तथ्य सचमुच गहन शोध का विषय हो सकता है कि साल भर बड़ी संख्या में पश्चिमी पर्यटकों के निरंतर आगमन के बावजूद मालदीव के जनजीवन की अपनी पहचान सुरक्षित है। मालदीव की भाषा, पहनावा, खानपान, रीतिरिवाज़, धार्मिक मान्यताएं एवं सामाजिक परंपराएं काफी हद तक जीवंत रूप में विद्यमान हैं। पर्यटन के लिए विकसित द्वीपों में समुद्र के किनारे धूप के लिए लेटे या घूमते पश्चिमी जोड़े जहाँ-तहाँ अर्ध नग्नावस्था में देखे जा सकते हैं किंतु मालदीव के स्थानीय लोग ऐसी अवस्था में नहीं दिखाई देते। अपनी संस्कृति को पश्चिमी प्रभाव से बचाने के लिए मालदीव सरकार ने नग्नता पर कानूनी प्रतिबंध लगाया हुआ है और स्विमिंग सूट तथा 'बीच' पर पहने जाने वाले वस्त्र केवल पर्यटन के लिए विकसित द्वीपों पर ही पहने जा सकते हैं। देश के अन्य हिस्सों में इन्हें पहने जाने पर पाबंदी है। महिलाओं द्वारा पारदर्शी और महीन कपड़े पहनने पर भी रोक है। मालदीव की अधिकतर महिलाएं 'लिबास' नाम का स्थानीय पहनावा पहनती हैं जिससे सिर से पांव तक पूरा शरीर ढका रहता है। परंतु बुर्के या पर्दे की प्रथा वहाँ नहीं है। पुरुष मुख्यतया पेंट-कमीज़ या कोट पैंट पहनते हैं। स्कूली लड़कियां स्कर्ट पहनती हैं। वहाँ साड़ी और सूट पहनने का रिवाज़ भी बढ़ रहा है। मालदीव के जन-जीवन में धार्मिकता तो है परंतु कट्टरता नहीं है। दूसरे धर्मों और संस्कृतियों के प्रति पूर्ण सम्मान का भाव मौजूद है। विदेशी सैलानियों के प्रति आतिथ्यभाव में यह सहनशीलता और विनम्रता पूरी तरह झलकती है। मालदीव के लोग विदेशी पर्यटकों को पूरा सम्मान और स्नेह देते हैं।

द्वीपों का देश होने के कारण मालदीव में पानी ज़्यादा है और भूक्षेत्र कम। यही कारण है कि यहाँ पर ऐतिहासिक इमारतें अधिक नहीं हैं। फिर भी ऐसे अनेक प्राचीन एवं आधुनिक स्थल हैं जो मालदीव की सांस्कृतिक धरोहर एवं सौंदर्य बोध के परिचायक हैं। माले स्थित इस्लामिक सेंटर आधुनिक वास्तुकला का सुंदर उदाहरण है। इस तीन मंज़िला केंद्र का निर्माण 1984 में किया गया। यहाँ बनी विशाल जामा मस्जिद देश की सबसे बड़ी मस्जिद है जहाँ 50,000 लोग एक साथ नमाज़ अदा कर सकते हैं। मस्जिद का सुनहरा गुंबद बरबस ही लोगों को अपनी ओर आकर्षित करता है। इस केंद्र में मस्जिद के अलावा पुस्तकालय और एक बड़ा हाल भी है।

भारत के शाहजहां की तरह मध्यकाल में मालदीव के शासक सुल्तान इब्राहीम इस्कंदर प्रथम ने भी भव्य इमारतें बनवाईं। इनमें 1656 में बनी मस्जिद कुकुरू मिस्की और 1675 में बनी सफेद मीनार विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सफेद मीनार के पास ही अबू बराकान यूसुफ की मज़ार है जिनके बारे में कहा जाता है कि उन्होंने 1153 में उत्तरी अमरीका से आकर मालदीव में सर्वप्रथम इस्लाम धर्म का प्रचार किया था।

1953 से 1968 तक के 16 वर्षों की अवधि में मालदीव का राजनीतिक स्वरूप गणराज्य से सल्तनत और फिर सल्तनत से गणराज्य में बदला। गणराज्य की स्थापना के बाद सुल्तान के महल के कुछ हिस्से को छोड़कर शेष भवन को गिरा दिया गया और उस जगह पर सुलतान पार्क नाम से आधुनिक पार्क विकसित किया गया। इमारत का जो हिस्सा बच गया था उसमें राष्ट्रीय संग्रहालय बनाया गया है जिसमें इस्लाम पूर्व काल की अनेक प्राचीन कलाकृतियां और अन्य वस्तुएँ रखी गई हैं। इनमें 11वीं शताब्दी की एक बौद्ध प्रतिमा भी शामिल है। मालदीव के टापुओं में शाम को मद्धिम रोशनी में लोकनृत्यों तथा पश्चिमी, भारतीय और स्थानीय संगीत का समां बंध जाता है। अधिकतर लोग मांसाहारी हैं किंतु भोजन में फलों और सब्जियों का विशेष स्थान है। यहाँ पर एक विचित्र तथ्य का उल्लेख करना आवश्यक होगा कि विशाल जलराशि (समुद्र) के बीच स्थित होने पर भी मालदीव में पेय जल का भारी अभाव है। वहाँ मुख्यतया अमरीका से आयातित मिनरल वाटर का ही इस्तेमाल होता है और होटलों के पानी की एक बोतल भारतीय मुद्रा में लगभग 100 रुपये में मिलती है।

मालदीव में भारत और भारतवासियों को विशेष महत्व एवं सम्मान प्राप्त है। मालदीव में रहने वाले विदेशी मूल के लोगों में सबसे अधिक 13000 संख्या भारतीय मूल के लोगों की है। इसके बाद श्रीलंका का स्थान है। भारतीय लोगों में अधिक संख्या केरल के लोगों की है। भारतीय मूल के लोग स्थानीय लोगों के साथ पूरी तरह मेलजोल और सामंजस्य के साथ रहते हैं। हिन्दी फिल्में और फिल्मी संगीत वहाँ बहुत लोकप्रिय है। पिछले वर्ष सितम्बर में प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी की यात्रा के दौरान पर्यटन राज्यमंत्री के रूप में श्री विनोद खन्ना वहां गए तो वे स्थानीय लोगों, विशेषकर युवा वर्ग के आकर्षण का विशेष केन्द्र बने रहे और वे जहाँ भी जाते उनके आटोग्राफ लेने वालों की लाइन लग जाती। मालदीव में भारतीयों के प्रति विशेष स्नेह और प्रेम का एक कारण यह भी है कि भारत मालदीव की स्वतंत्रता के समय से ही वहाँ के विकास में सहयोग देता रहा है। भारत ने मालदीव में शिक्षा, पर्यटन और स्वास्थ्य सुविधाओं के विकास में काफी सहयोग दिया है। भारत इस समय मालदीव में नए संग्रहालय की स्थापना में मदद कर रहा है। भारत के पुरातत्व विशेषज्ञों ने मालदीव की एक ऐतिहासिक मस्जिद की मरम्मत की है और एक अन्य मस्जिद की मरम्मत का काम किया रहा है।

भारत और मालदीव की मैत्री सांस्कृतिक सहयोग तक सीमित नहीं हैं। दोनों देशों के संबंधों की जड़ें कितनी सुदृढ़ हैं, इसका एक ज्वलंत प्रमाण है मालदीव का राष्ट्रीय दिवस। मालदीव के लोग हर वर्ष 3 नवम्बर का दिन राष्ट्रीय दिवस के रूप में मनाते हैं क्योंकि 1988 में इसी दिन राष्ट्रपति श्री गयूम के खिलाफ सत्ता पलट प्रयास को भारत की मदद से विफल कर दिया गया था। तत्कालीन राजीव गांधी सरकार ने श्री गयूम के अनुरोध पर तत्काल भारतीय सेना भेजकर आंतरिक विद्रोह को दबाने में मालदीव सरकार की मदद की थी। यही नहीं, भारत पहला देश था जिसने मालदीव को स्वतंत्र होने पर उसे मान्यता दी और उसके साथ राजनयिक संबंध स्थापित किया।

सांस्कृतिक और राजनीतिक रिश्तों के साथ-साथ निरंतर बढ़ते आर्थिक एवं व्यापारिक सहयोग ने भी दोनों देशों को एक दूसरे के करीब लाने में उल्लेखनीय भूमिका निभाई है। 1986 में श्री राजीव गांधी की मालदीव यात्रा के बाद आर्थिक सहयोग को गति मिली। उसके बाद से राष्ट्रपति श्री गयूम अनेक बार भारत आ चुके हैं। वे गणतंत्र दिवस पर विशेष अतिथि भी रहे हैं। मालदीव के आर्थिक एवं

तकनीकी विकास में भारत की अग्रणी भूमिका रही है। 1986 में भारत-मालदीव आर्थिक एवं तकनीकी संयुक्त आयोग बनाया गया, जिसकी बैठकें बारी-बारी से माले और नई दिल्ली में होती हैं। इन बैठकों में आपसी सहयोग के नए क्षेत्रों की पहचान की जाती है। श्री राजीव गांधी की यात्रा के दौरान माले में भारत की सहायता से आधुनिक चिकित्सा केंद्र बनाने का निर्णय हुआ जिसके अनुसार वहाँ 200 बिस्तरों वाला अस्पताल बनाया गया जिस पर 42 करोड़ रुपये खर्च हुए। इंदिरा गांधी मेमोरियल अस्पताल नाम का यह परिसर 1995 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री नरसिम्ह राव की मालदीव यात्रा के दौरान वहाँ की जनता को समर्पित किया गया। इसका निर्माण भारत की ही सार्वजनिक क्षेत्र की इकाई एन बी सी सी ने किया। इस अस्पताल के लिए डॉक्टरों, नर्सों तथा अन्य कर्मचारियों को प्रशिक्षित भी भारत में किया जाता है।

तकनीकी सहयोग को आगे बढ़ाते हुए 1993 में माले तकनीकी शिक्षा संस्थान का शिलान्यास किया गया जो 12 करोड़ रुपये की लागत से 1997 में बनकर तैयार हुआ। इस संस्थान में हर वर्ष 200 छात्र/छात्राएं तकनीकी प्रशिक्षण ग्रहण कर सकते हैं। मालदीव में सामान्य शिक्षा के प्रसार में भी भारत ने पर्याप्त योगदान दिया है। कोलम्बो योजना के अंतर्गत अनेक छात्रवृत्तियां देने के अतिरिक्त मालदीव के छात्रों के लिए भारत के विश्वविद्यालयों में सीटें आरक्षित की जाती हैं। मालदीव के स्कूलों, कॉलेजों व विश्वविद्यालयों के अध्यापकों तथा प्राध्यापकों को भी भारत में प्रशिक्षण दिया जाता है। दोनों देशों के बीच मानव संसाधन विकास का व्यापक समझौता है जिसके अंतर्गत मालदीव के अधिकारी व कर्मचारी भारत में प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से मालदीव में पत्राचार शिक्षा के विकास में प्रयास किए गए हैं।

भारत और मालदीव के बीच 1981 में पहला व्यापारिक समझौता हुआ था, जिसके अंतर्गत भारत उन वस्तुओं का भी मालदीव को निर्यात करने को सहमत हुआ, जिनका अन्य देशों को निर्यात करने पर पाबंदी थी। भारत के निरंतर औद्योगिक विकास के कारण आपसी व्यापास सदैव भारत के पक्ष में रहा है। 2001 में भारत ने 188.6 करोड़ रुपये का निर्यात किया जबकि केवल 1.31 करोड़ रुपये का आयात किया। भारत मालदीव से मुख्यतया समुद्री पदार्थ मंगाता है जबकि वहाँ चीनी, फल, मसाले, आटा, वस्त्र, दवाएं जैसी अनेक वस्तुएँ तथा इंजीनियरी सामान

का निर्यात करता है। अब निजी क्षेत्र की कंपनियां सीधे तौर पर मालदीव में निर्यात तथा पूंजी निवेश करने लगी हैं। भारत तथा मालदीव के संयुक्त उद्यम स्थापित किए जा रहे हैं। जो मालदीव में उद्योग, पर्यटन, शिक्षा, सूचना टेक्नोलॉजी जैसे विभिन्न क्षेत्रों में परियोजनाएं चला रहे हैं। भारतीय स्टेट बैंक भी मालदीव के आर्थिक विकास में योगदान कर रहा है।

सितम्बर 2002 में प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी की मालदीव यात्रा के दौरान वहाँ के विकास में भारत के योगदान में और वृद्धि करने के फैसले किए गए। श्री वाजपेयी ने मालदीव के प्रमुख उद्योग पर्यटन के लिए प्रशिक्षित कर्मचारी तैयार करने के लिए भारत सरकार की वित्तीय सहायता से बनने वाले हास्पीटैलिटी एंड टूरिज़्म स्टडीज़ फैकल्टी की आधारशिला रखी। उन्होंने सूचना टेक्नोलॉजी, मछली पालन, पर्यटन विकास तथा शिक्षा के क्षेत्र में सहायता की भी पेशकश की। उन्होंने अपनी यात्रा के दौरान एक अति महत्वपूर्ण बात यह कही कि मालदीव ने जिस तरह पर्यटन का विकास करके देश को आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ बनाया है, उससे भारत बहुत कुछ सीख सकता है। सचमुच पर्यटन के क्षेत्र में दोनों देशों में सहयोग की महती संभावनाएं हैं।

भारत और मालदीव के बीच गहरी दोस्ती का मुख्य कारण यह है कि दोनों देशों ने सदैव एक-दूसरे का सम्मान किया है और कभी भी ऐसा काम नहीं किया जिससे उनके पारस्परिक संबंधों में कड़वाहट आए। भारत ने सदैव बड़े होने के कारण सहायता में अधिक हिस्सेदारी निभाई है लेकिन कभी यह आभास नहीं होने दिया कि वह बड़ा है। समानता और सौहार्द ही इस रिश्ते की प्राणवायु है। सच तो यह है कि सार्क के सात देशों में भारत के जैसे स्नेहपूर्ण तथा मैत्रीपूर्ण संबंध मालदीव के साथ हैं, वैसे अन्य किसी अन्य किसी पड़ोसी देश के साथ नहीं है। मालदीव आकार और जनसंख्या की दृष्टि से भले ही सबसे छोटा पड़ोसी देश है परंतु भारत के साथ उसके संबंध बहुत बड़े और व्यापक हैं। इन मधुर संबंधों और सांस्कृतिक एकता के कारण भारत के लिए मालदीव का विशेष स्थान है।

सूर्य, समुद्र और सिक्ता की इंद्रधनुषी प्राकृतिक शोभा और संतुलित एवं स्नेहसिक्त सांस्कृतिक आभा मालदीव को सचमुच अनूठी भव्यता प्रदान कर रही है। ऐसे सुंदर एवं स्नेहिल पड़ोसी एवं मित्र पर भारत क्यों न गर्व करे ?

❑ ❑

विश्व में प्रवासी भारतीयों एवं हिन्दी की संघर्ष गाथा

महात्तम सिंह

आज यह विषय सर्व विदित है कि हिन्दी के पठन-पाठन और प्रचार-प्रसार का कार्य विश्व में दो धाराओं में प्रभावित हुआ है। एक धारा तो वह है जिसके अन्तर्गत लगभग 30 देशों में अनुमानतः 105 विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ाई जाती है। इस धारा के लोगों की मातृभाषा उनकी अपनी कोई भाषा होती है, किन्तु वे प्रायः भारत प्रेम या प्राच्य भाषा प्रेम के कारण हिन्दी सीखते सिखाते हैं। दूसरी धारा उन देशों की है जहाँ प्रवासी भारतीय या भारत वंशी बड़ी संख्या में विद्यमान हैं जो गत शताब्दी में शर्तनामे में बंध कर अथवा व्यापारी बन कर भारत से बाहर गये।

इसके साथ ही अन्तर्देशीय आप्रवासन के रूप में भारत से लोग एक बड़ी संख्या में बर्मा, सीलोन और मलय देश में गये। साथ ही मारीशस, गियाना, त्रीनीदाद, सूरीनाम, पूर्वी एवं दक्षिणी अफ्रीका में शर्त बन्ध मजदूर बन कर गये।

इतिहास के पन्ने बताते हैं कि दास प्रथा की समाप्ति पर गन्ने और रूई की उपज के लिये मजदूरों की समस्या आ उपस्थित हुई। मालिकों ने मुक्त दासों से पुनः काम लेने का प्रयास किया। कभी दंड और कभी प्रलोभन का सहारा लिया गया,

पर सफलता नहीं मिली। अन्त में एक तरह से निश्चित सा दिखने लगा कि बाहर से मजदूरों को लाने के सिवा और कोई दूसरा उपाय सफल नहीं हो पायेगा। कैरिबियाई देशों में विशेषतया गियाना और त्रीनीदाद में मैडियरा और वेस्टइण्डीज के कतिपय देशों से लोग लाये गये पर टिक नहीं पाये और मजदूरों की समस्या का कोई हल नहीं दिखाई पड़ा। भारत से लिखा पढ़ी के फलस्वरूप मॉरीशस, गियाना, सूरीनाम और फीजी में क्रमशः वर्ष 1834, 1838, 1873 और 1879 में प्रतिज्ञाबद्ध मजदूर लाये गये।

आगे चलकर उनको एक और सार्थक नाम मिला गिरमिटिया। इसकी व्युत्पत्ति अंग्रेजी के एग्रीमेंट शब्द से मानी जाती है। पाँच वर्षों के लिये एग्रीमेंट में बंधकर वे विदेशों में गये। उनके दुःख दर्द की कहानी का आकलन इसी से लगाया जा सकता है कि उन्हें एक तरह से क्रीत दासों जैसा जीवन यापन करना पड़ा था। और वह इसलिये कि जो शक्तियाँ और जो स्वार्थ गुलामी को कायम रखने और इसके कार्य काल को बढ़ाने में रूचि रखती थीं वही बाद में गिरमिटिया कुली प्रथा के प्रारम्भ कराने में प्रेरक हुईं। इन शक्तियों ने बड़ी चतुराई के साथ विशेषतया उत्तर भारत में दलालों का एक शक्तिशाली वर्ग तैयार कर दिया जो पीछे चलकर आरकाठी के नाम से प्रसिद्ध हुए। वे दिन रात सोते जागते यही सोचते रहते थे कि किस प्रकार एक मजदूर को फाँस कर डिपो में ले जाएँ।

आरकाठियों ने जिन दो शक्तिशाली हथकंडों का उपयोग किया उनमें एक तो जिन देशों में उन्हें जाना होता उसे स्वर्ग से भी बढ़ा चढ़ा कर बताना और दूसरा उन्हें यह न पता होने देना कि वह देश भारत से कितना दूर है। इन पंक्तियों के लेखक को नब्बे वर्षीय स्वं पं० भवानी भीख श्री मिश्र ने बताया था कि उनसे देश का नाम सूरीनाम न बताकर श्री राम टापू बताया गया था। और यह भी कहा गया कि यह देश कलकत्ते के पास ही बंगाल की खाड़ी में स्थित है। पाल की जहाज में समुद्री बीमारी से ग्रस्त कई दिनों के पश्चात जब उनकी चेतना जगी तो वे जान पाए कि उनके साथ धोखा हुआ है। डिपों में, जहाज पर चढ़ने के पूर्व कई लोगों ने अंग्रेज अधिकारियों के पास गिड़गिड़ा कर मुक्ति के लिए प्रार्थना की तो उत्तर मिला, अब उनके सामने केवल दो रास्ते रह गये हैं, पाँच वर्ष की नौकरी अथवा पाँच वर्ष की कैद।

प्रवासी भारतीयों की हृदय विदारक गाथाएँ भारत पहुँचने लगीं। भारतीय नेताओं, जिनमें मदन मोहन मालवीय, गोपाल कृष्ण गोखले का नाम उल्लेखनीय है, के मन पर बड़ा गहरा असर पड़ा। उनके मन दुःख से कातर हो उठे। गोपाल कृष्ण के उद्‌गार यहाँ उद्धृत करना उन्हीं के शब्दों में समीचीन लगता है।

Under this system who are recruted bind themselves, first to go to a distant land and unknown land, the language usage and customs of which they did not know and where they have no friends or relatives.

Secondly, they send themselves to work therefore any employer to whom they may be alloted, whom they do not know and who do not know them, and in whose choice they have no voice.

Thirdly they bind themselves to live on the state of the employer, must not go any where without a special permit. and must do what ever tasks are assigned to them. no matter however irksome those task may be.

Fourthly the binding is for a certain fixed period, usually for five years. during which time they can not voluntarily withdraw from the contract and have no means of excaping from the hardship, however intolerable.

Fifthly they bind themselves to work during the period for a fixed wage, which invariably is lower and in some cases very much lower than the wage paid to free labour around them.

Sixthly and lastly. and this to my mind is the worst feature of the system, they are placed under special law. never explained to them before they left the country, which imposes on them a criminal. liability which usually attaches to such breaches.

Thus they are liable under this law to imprisonment with hard labour, which may extend to two and in some cases to three months, not only for fraud. and not only for dicemption but for negligence, for carelessness and will the council believe it for even an impertinent word or gesture to the manager or his oversear.

गोपाल कृष्ण गोखले जैसे अनुभवी भारतीय नेता ने गिरमिटिया मजदूरों की जिस दयनीय स्थिति का विशद और मार्मिक विवरण उपर्युक्त उद्धृत अनुच्छेद में दिया है उसी स्थिति का हृदय विदारक चित्रण फीजी के मुंगेर बिहार से लाये गये मुसहर की निम्नलिखित पंक्तियों में समाहित है—दिन चले कुदाली, रात नींद नहिं आये, सगरी देहियाँ आज मोरी पिराए, आरकाठी का नाश हो जाए।

गिरमिट प्रथा के विरोध में व्यापक आन्दोलन के फलस्वरूप कई जाँच कमेटियाँ स्थिति का सही पता लगाने के लिए बर्तानी सरकार द्वारा विभिन्न देशों में भेजी गईं। जिनमें मैकलिन और चिमन लाल तथा सी.एफ. एण्डूज और पिर्यसन का नाम उल्लेखनीय है।

पर गिरमिट प्रथा का अन्त कराने में सी.एफ. एण्डूज का कार्य अत्यन्त सराहनीय माना जाता है। उनका जन्म 12 फरवरी 1871 को इंगलैण्ड में हुआ था। वे 20 मई 1904 में बम्बई आये थे। श्री गोखले की आज्ञा लेकर वे 1914 में दक्षिण अफ्रीका पहुँचे थे। गांधी जी उन दिनों वहीं थे और जहाज पर ही श्री एण्डूज को लेने आये थे। एण्डूज जी ने गांधी जी के झुक कर पैर छुए थे, जिसके विरोध में अंग्रेज पत्रकारों ने बड़ा हल्ला मचाया था। यहीं से प्रवासी भारतीयों की समस्याओं के प्रति उनकी रूचि बढ़ी। वर्ष 1920 में गांधी जी ने भारत भक्त एण्डूज जी की भूमिका में लिखा "यदि धृष्टता न समझी जाए तो मैं अपना यह विश्वास लिपि बद्ध कर देना चाहता हूँ कि सी.एफ. एण्डूज से ज्यादा सच्चा, उनसे बढ़कर विनीत और अधिक भारत भक्त इस भूमि में कोई दूसरा सेवक विद्यमान नहीं"।

वे फीजी 1915, 1917 और 1936 में तीन बार गये थे। साथ ही गियाना, त्रीनीदाद और सूरीनाम की यात्रा पर भी आये थे। उन्होंने शर्तबन्ध मजदूरों के प्रति किये गये अत्याचारों से सम्बन्धित बहुत सारी सामग्री इकट्ठी की थी, जिनमें फीजी के प्रमुख चिकित्सकों द्वारा वहाँ के विधान सभा में प्रस्तुत विवरण ने बहुत बड़ा प्रभाव डाला। फीजी से अन्तिम बार लौटने पर सी.एफ. एण्डूज तात्कालिक राजकार्य सचिव ई.एस. मौंटेगू से दिल्ली में मिले थे। उन्होंने लिखा कि "श्री मौंटेगू घबड़ा गये और उन्होंने कहा, अब मैं आगे कुछ नहीं सुनना चाहता" और एक तरह से उसी समय शर्तबन्ध मजदूरों का बाहर भेजा जाना बन्द हो गया। सन् 1920 ई. तक प्रायः सभी स्थानों पर शर्तबन्ध मजदूरों को भेजा जाना बन्द हो गया। जितने लोग गये थे उनमें से कम-वेस एक तिहाई लोग लौटकर भारत वापस आये। बचे हुए लोग शर्त के अनुसार प्राप्त जमीन पर खेती बारी एवं पशुपालन के कार्यों में जुट गये। फीजी में स्थिति कुछ और हो गयी। प्रवासी भारतीयों को जमीन मिली, पर पट्टे के आधार पर। 1972 में स्वतंत्रता की प्राप्ति के पश्चात् भी स्थिति वैसी की वैसी है। जमीन पर आज भी उनका कोई स्वामित्व नहीं है।

गिरमिट प्रथा की समाप्ति पर भारतीयों के जीवन में एक नया मोड़ आया। अब वे शर्तबन्ध कुली न रहकर स्वतंत्र प्रवासी भारतीय हो गये थे। उनके सामने अब सबसे बड़ी समस्या थी किस तरह अपने आप्रवासी देश की सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक उत्थान में अपना सक्रिय योगदान दे सकें। इस कार्य में जुटने पर एक ओर तो उनकी अपनी आन्तरिक समस्याओं से जूझना पड़ा तो दूसरी ओर उन देशों की सार्वजनिक समस्याओं का सामना करना पड़ा। साथ ही अपनी मातृ भाषा, जिनमें हिन्दी प्रमुख रही, के प्रति अगाध प्रेम बना रहा। इतिहास के पन्ने इस बात के गवाह हैं कि जब कभी विभिन्न सांस्कृतिक स्तर के लोग एक स्थान पर एकत्रित हुए तब जो सबसे बड़ी समस्या सामने आई वह यह थी कि सुसंस्कृत पिछड़ी संस्कृति के लोग और लोगों के साथ समाज में एक साथ किस तरह जीवन यापन करें। देखा यह गया कि प्राचीन समय में कई देशों में सम्पन्न संस्कृति ने अविकसित संस्कृति के लोगों का उन्मूलन करके समस्या का समाधान पाया। इससे बहुत सारे देशों ने पिछड़े लोगों को पराभूत करके रखने का रास्ता अपनाया। क्रीत दास प्रथा और कुछ अंशों में गिरमिट प्रथा इसी प्रक्रिया की द्योतक रहीं। पर भारत में अपनी उच्च सांस्कृतिक मान्यताओं जैसे "वसुधैव कुटुम्बकम्" और "यत्र विश्वम् भवति एक नीडम्" के आधार पर पिछड़े वर्ग के लोगों को अपने जीवन को समुन्नत करने का पूरा पूरा अधिकार दिया गया। भारत के ग्राम इसके जीते जागते प्रतीक बने। उपसंहार में यही निवेदन किया जा सकता है कि भारत से गिरमिटया बनाकर मजदूर भारत से बाहर ले जाये गये। उन्हें दुःख तो दिया गया पर तोड़ा नहीं जा सका क्योंकि संस्कृति एवं भाषा ने उनका साथ दिया।

9-11 जनवरी 2003 को भारत में प्रथम प्रवासी दिवस मनाया गया।

9 जनवरी का महत्व स्वीकार किया गया है क्योंकि इसी दिन महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे थे। सम्मेलन के द्वारा यह स्पष्ट हुआ है कि अनिवासी एवं भारतीय अनुवंशीय 20 देशों में लगभग 20 मीलियन की संख्या में बसे हैं।

उनके साथ भारत का स्नेहमय संबन्ध अभिनन्दनीय है।

❑❑

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी की स्थिति

डॉ. दामोदर खड़से

आज हम वैश्वीकरण के युग में प्रवेश कर चुके हैं। व्यापार के लिए देश की सीमाएं टूट रही हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियां विभिन्न देशों में जाकर अपने उत्पादों की खपत के लिए नये स्रोतों की सतत तलाश कर रही हैं। स्पष्ट है कि ऐसी स्थिति में बाजार एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में उभरकर सामने आया है। विश्व-बाजार के इस परिदृश्य में ज्ञान-विज्ञान की सभी शाखाएं मांग और आपूर्ति के नियम के अनुसार खपत के लिए संभावनाओं के द्वार खटखटा रही हैं। इस प्रक्रिया में आवागमन, संचार और तमाम माध्यमों पर भारी आवा-जाही हो रही है। विज्ञान के चमत्कारों ने देशों की दूरियां कम कर दी हैं। संदेशों को पहुंचाने में समय कम कर दिया है। इसलिए यात्राओं और संदेशों की गति बेहिसाब बढ़ गई है। महीनों यात्रा के बाद विदेश जाना अब घंटों में सिमट आया है। अब पलक झपकते ही इंटरनेट और सेल्युलर सेवाओं के माध्यम से दुनिया के किसी भी कोने में संदेश पहुचाना बहुत आसान हो गया है। इस तेज-गति संचार साधनों में भाषा की भूमिका बहुत अहम हो उठी है। इसीलिए हम देखते हैं कि दुनिया भर की बहुराष्ट्रीय कंपनियां भारत में अपना उत्पाद बेचने के लिए हिन्दी और भारतीय भाषाओं का

सहारा ले रही हैं। अमेरिका से भारत दौरे पर आए माइक्रोसॉफ्ट के प्रमुख बिल गेट्स ने मुंबई में कहा कि भारत को हिन्दी सॉफ्टवेयर की आवश्यकता है और यह आवश्यकता पूरी करने के लिए माइक्रोसॉफ्ट तैयार है। उनके इस वक्तव्य को भारत के सभी भाषाओं के अखबारों ने प्रमुखता से छापा। इससे यह स्पष्ट होता है कि विश्व की सबसे बड़ी कंप्यूटर कंपनी ने भी हिन्दी के महत्व को स्वीकार किया है।

विदेश में लगभग 154 देशों के विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ाई जाती है। इसमें आप्रवासी भारतीयों के अलावा स्थानीय छात्र भी हिन्दी का अध्ययन करते हैं। एक समय था जब हिन्दी का अध्ययन साहित्य-संस्कृति और एक भाषा के रूप में प्रमुखता से किया जाता था। पर आज हिन्दी एक व्यावसायिक-व्यावहारिक भाषा के रूप में भी अपनायी जा रही है। साहित्य के माध्यम से अपनी संस्कृति, मान्यताओं और भावनात्मक धरोहरों को अक्षुण्ण रखने का प्रयास किया जाता है, वहीं रोजी रोटी के लिए प्रयोजनमूलक हिन्दी को अपनाया जा रहा है। विदेश में हिन्दी, सांस्कृतिक दूत का काम भी करती है। कई विदेशी विद्वान हिन्दी की विशिष्टता की ओर आकर्षित हुए और उन्होंने इस भाषा पर अपना प्रभुत्व सिद्ध किया। उन्होंने हिन्दी में रचनाएं की। साथ ही, हिन्दी से अपनी भाषा में और अपनी भाषा से हिन्दी में अनुवाद किए। इस तरह हिन्दी ज्ञान-विज्ञान और साहित्य-संस्कृति के आदान-प्रदान का माध्यम बन गई।

विदेशों में हिन्दी की स्थिति को तीन वर्गों में देखा जा सकता है। पहले वर्ग में वे लोग आते हैं जो जीविकोपार्जन के लिए पीढ़ियों पहले भारत से विदेश आ बसे। हिन्दी को अपनी अस्मिता के साथ उन्होंने जोड़े रखा। इन देशों में मारीशस, सूरीनाम, फीजी, ट्रिनीडाड, गुयाना आदि देशों को शामिल किया जा सकता है। मारीशस के अभिमन्यु अनत हिन्दी के पचास से अधिक पुस्तकों के लेखक हैं। वे हिन्दी के प्रमुख लेखकों में माने जाते हैं। हिन्दी भाषा में वे मारीशस के जन-जीवन को शब्द बद्ध कर रहे हैं। इनके अलावा कृष्ण बिहारी मिश्र, रामदेव धुरंधर आदि प्रमुख उपन्यासकार हैं। कविता के क्षेत्र में पं. लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी "रसपुंज" प्रथम कवि माने जाते हैं। साथ ही, सोमदत्त बखोरी, हेमराज सुंदर, राजवंती अजोधिया आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। मारीशस से "आर्योदय", "आक्रोश" और "इंद्रधनुष" नामक हिन्दी पत्रिकाएं नियमित प्रकाशित होती हैं। फीजी में

पं. कमलाप्रसाद मिश्र, पं काशीराम कुमुद, बाबू कुंवर सिंह, गुरुदयाल शर्मा के नाम सुपरिचित हैं। सूरीनाम में अमरसिंह रमण, जीत नारायण, सूर्यप्रसाद वीरे प्रमुख नाम हैं। इन देशों में हिन्दी भाषी भारतीय मूल के नागरिकों की संख्या इतनी अधिक है कि वे वहाँ की राजनीति, प्रशासन और सामाजिक जीवन के महत्वपूर्ण अंग हैं। वे हिन्दी के लिए बहुत योगदान दे रहे हैं। संभवतः यही कारण होगा कि दूसरा और चौथा विश्व हिन्दी सम्मेलन मारीशस में और पांचवां, ट्रिनीडाड में आयोजित किया गया। विश्व समुदाय के सामने हिन्दी की व्यापक स्वीकृति के लिए ये प्रभावी प्रयास रहे हैं।

दूसरे वर्ग में भारत के पड़ोसी देश है, जहाँ अनायास ही हिन्दी, भाषा के रूप में विद्यमान है। इन देशों में नेपाल, ब्रह्मदेश, श्रीलंका, पाकिस्तान, चीन आदि देशों का समावेश हो सकता है।

तीसरे वर्ग में ब्रिटेन, अमेरिका, कनाडा, जर्मनी, फ्रांस, स्वीडन, बेल्जियम, चेकोस्लोवाकिया, रूस, जापान आदि देशों को रखा जा सकता है। इन देशों में भारतीय लोगों की संख्या काफी बढ़ रही है। व्यापार-रोजगार आदि क्षेत्रों में भारतीय आप्रवासियों की संख्या निरंतर बढ़ रही है। साथ ही, इन देशों के हिन्दी के विद्वान काफी उल्लेखनीय योगदान कर रहे हैं। बेल्जियम के फादर कामिल बुल्के का योगदान भला कौन भुला सकता है। अंग्रेजी-हिन्दी शब्दकोश के रूप में उन्होंने हिन्दी जगत को अनोखा उपहार दिया है। साथ ही, वे रामकथा के अनन्य व्याख्याता रहे।

चेकोस्लोवाकिया के डॉ. आदोलेन स्मेकल भारत में चेक गणराज्य के राजदूत रहे। उन्होंने चार्ल्स विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम.ए. और पीएच.डी. की उपाधि हासिल की। हिन्दी में उनके आठ कविता संग्रह प्रकाशित हुए। "गोदान" का उन्होंने चेक भाषा में अनुवाद किया। वे हिन्दी को अपनी दूसरी मातृभाषा मानते रहे। रूस के अलेक्सेई बरान्निकोव ने हिन्दी-रूसी शब्दकोश का निर्माण किया। आधुनिक कविता पर डॉ. येवगेनी चेलीशेव ने डॉक्टरेट की उपाधि हासिल की। उन्होंने लगभग 200 हिन्दी पुस्तकें लिखी। जर्मनी के डॉ. लोठार लुत्से भारत के लिए एक सुपरिचित नाम हैं। वे हाइडेलबर्ग विश्वविद्यालय (जर्मनी) के आधुनिक भाषा एवं साहित्य विभाग के अध्यक्ष हैं। डॉ. लुत्से का भाषा विज्ञान के प्रति विशिष्ट लगाव रहा है। उनकी हिन्दी कविताओं का जर्मनी में अनुवाद हुआ है। डॉ. इरा भी जर्मनी

में हिन्दी की प्राध्यापिका हैं। उन्होंने लंदन विश्वविद्यालय से हिन्दी लघु कथाओं पर पी.एच.डी. के लिए काम करते हुए भारत का व्यापक दौरा किया। पुणे में एक सप्ताह रूककर उन्होंने लघु कथाओं पर विस्तार से विचार-विमर्श किया। जापान में आठ विश्वविद्यालयों में हिन्दी का अध्यापन होता है। प्रो. तोशियो, प्रो. काजारूको ने भारत आकर हिन्दी का अध्ययन पूरा किया है। हिन्दी की कई कृतियों का जापानी में अनुवाद हुआ है। पिछले दिनों जापानी कलाकारों द्वारा भारत में एक हिन्दी नाटक का विविध स्थानों पर सफल मंचन भी किया गया।

इंग्लैंड में हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन की एक लंबी परंपरा रही है। बीबीसी पर हिन्दी समाचार एवं अन्य कार्यक्रम नियमित रूप से होते रहे हैं। एफ.एस. ग्राउज ने निरंतर समर्पण से रामचरितमानस का अंग्रेजी अनुवाद किया है। गौतम सचदेव, कैलाश बुधवार, ओंकारनाथ श्रीवास्तव, भारतेन्दु विमल, कीर्ति चौधरी, अचला शर्मा ने बीबीसी के माध्यम से हिन्दी कार्यक्रमों को विशेष प्रतिष्ठा दिलाई। वर्तमान में डॉ. रुपर्ट स्नेल इंग्लैंड में हिन्दी के पर्याय बन गये हैं। उन्होंने लंदन विश्वविद्यालय से 1984 में पी.एच.डी की उपाधि हासिल की। फिलहाल वे लंदन विश्वविद्यालय में हिन्दी के रीडर हैं। उन्होंने यशपाल, उपेन्द्रनाथ अश्क, बिहारी, रसखान आदि भारतीय साहित्यकारों की कृतियों का अंग्रेजी में अनुवाद किया। पिछले दिनों डॉ. हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा के एक खंड का उनका अंग्रेजी अनुवाद "इन दू आफ्टरनून ऑफ टाइम" इंग्लैंड में प्रकाशित हुआ है। उनसे बातचीत में कतई नहीं लगता कि हम किसी अंग्रेज से हिन्दी का उच्चारण सुन रहे हैं। वे हिन्दी भाषी की तरह स्पष्ट और हिन्दी लहजे में शब्दों का सटीक उच्चारण करते हैं। इसके लिए मेरठ, आगरा और वाराणसी जैसे नगरों में जाकर उन्होंने उच्चारण से संबंधित अभ्यास किया है। दो-तीन दिन उनके साथ रहने का मौका मिला। वे विनोदप्रिय व्यक्ति हैं और मुहावरेदार हिन्दी बोलने में निपुण हैं। मजाक में वे कहते हैं मैं हिन्दी के साथ इतना घुल-मिल गया हूँ कि कई लोग मुझे रूपर्ट स्नेल की बजाय "रूप सिंह" कहना अधिक सही समझते हैं। डॉ. रूपर्ट स्नेल को हिन्दी में लेखन के लिए भारत सरकार ने 1998 में दो लाख रुपये के पुरस्कार से सम्मानित किया है।

इंग्लैंड में भारतीय लोगों की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है। एक सर्वेक्षण में तो यहाँ तक कहा गया कि लंदन की दूसरी भाषा हिन्दी होती जा रही है क्योंकि

भारतीय उप महाद्वीप के विभिन्न देशों के लोग अपनी पहचान के लिए हिन्दी का उपयोग कर सुरक्षित अनुभव करते हैं। भारत के अलावा पाकिस्तान, नेपाल, बंग्ला देश, म्यांमार, श्रीलंका आदि देशों के नागरिक हिन्दी में बोलने को प्राथमिकता देते हैं। अपने आकार-प्रकार और रंग-रूप के कारण इन देशों के लोग एक-दूसरे को जान जाते हैं। अपरिचित होने के बावजूद वे आपस में संवाद के लिए हिन्दी का उपयोग करते हैं। अंग्रेजी के बाद सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा हिन्दी ही मानी जाती है।

ब्रिटेन में हिन्दी की तमाम संस्थाएं भी हैं। "यू.के. हिन्दी समिति" का संचालन श्री पद्मेश गुप्त व श्रीमती उषाराजे सक्सेना करते हैं। बर्मिंघम में "गीतांजली बहुभाषीय समुदाय" नामक संस्था डॉ. कृष्णकुमार व सुश्री तितिक्षा आनंद की देखरेख में चलती है। "भाषा संगम" का संचालन महेन्द्र वर्मा करते हैं। साथ ही, अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी कवि सम्मेलन, भाषा सम्मेलन आयोजित होते हैं। छठाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन लंदन में ही आयोजित किया।

पिछले तीन वर्षों से कथाकार तेजेन्द्र शर्मा के नेतृत्व में इंग्लैंड में हिन्दी साहित्य की गतिविधियां बहुत तेज हो गई हैं। लंदन में वे "अंतर्राष्ट्रीय इंदु शर्मा कथा सम्मान" का आयोजन करते हैं। इस अवसर पर विभिन्न गोष्ठियां और कवि सम्मेलनों के संयोजन सहित लंदन के और भारत से जाने वाले साहित्यकारों का महत्वपूर्ण विचार-विमर्श होता है। इंग्लैंड में कई ऐसे साहित्यकार हैं जो अपने वर्तमान को हिन्दी में शब्दबद्ध कर रहे हैं। सत्येन्द्र श्रीवास्तव भी उनमें से एक है।

लंदन में हिन्दी रचनाकारों का बड़ा कारवां है। भारत में कथाकार सूरजप्रकाश "अंतर्राष्ट्रीय इंदु शर्मा कथा सम्मान" का संयोजन करते हैं। सूरजप्रकाश ने "कथा लंदन" नामक एक कथा संग्रह का संपादन भी किया है। इसमें भारतेंदु विमल, शैल अग्रवाल, कैसर तमकीन, दिव्या माथुर, गौतम सचदेव, अरुण आस्थाना, उषाराजे सक्सेना, पद्मेश गुप्त, तेजेन्द्र शर्मा की सक्रिय भागीदारी है। इस संस्था द्वारा अब तक चित्रा मुद्‌गल, संजीव, ज्ञान चतुर्वेदी को नेहरू सेंटर, लंदन में सम्मानित किया जा चुका है।

सारा विश्व जब उदारीकरण और वैश्वीकरण की ओर बढ़ रहा है, ऐसे में विश्व की आर्थिक राजधानी अमेरिका ने विश्व गांव के सरपंच की नकेल कब अपने हाथ में ले ली, किसी को पता ही नहीं चला। विश्व की ऐसी आर्थिक राजधानी में

सुख-सुविधाओं के चुंबक की ओर आकर्षित होने में ज्ञान-विज्ञान में निपुण लोग सबसे आगे रहे हैं। भारत से भी अमेरिका जाने वालों की संख्या कम नहीं है।

अमेरिका जैसे महाकाय देश में अपनी पहचान कायम रखने के लिए भारतीयों ने कोई कोर-कसर नहीं रख छोड़ी। अमेरिका में, भारत के विभिन्न प्रांतों के लोग हैं। वहाँ वे सब हिन्दी माध्यम से जुड़ते हैं। अपनी अस्मिता और पहचान के लिए हिन्दी कार्यक्रमों में बड़ी संख्या में शामिल होते हैं।

अमेरिका में "अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति" की "विश्वा", "विश्व हिन्दी समिति" की "सौरभ", "विश्व हिन्दी न्यास" की "हिन्दी जगत" पत्रिकाएं नियमित रूप से प्रकाशित होती हैं। साथ ही, न्यूयार्क स्थित "भारतीय विद्या भवन" की ओर से हिन्दी से संबंधित कार्यक्रमों का संचालन, भवन के कार्यकारी निदेशक डॉ. पी. जयरामन बिल्कुल नई संकल्पनाओं के साथ करते हैं। विविध प्रकाशनों के अलावा हिन्दी शिक्षण के प्रति भी वे समर्पित हैं। उम्र उनकी व्यस्तताओं को शिथिल नहीं कर पाई। अब भी वे प्रशासनिक कार्यों के साथ अध्यापन भी करते हैं। भारतीय संस्कृति व साहित्य से परिचित करवाने हेतु वे अमेरिका के हिन्दी छात्रों का चयन कर भारत भ्रमण पर लाते हैं। इनमें अमेरिका मूल के छात्र भी होते हैं। अब वे न्यूयार्क में सर्व भारतीय भाषा सम्मेलन का आयोजन कर रहे हैं। भारत में इस कार्य में सुश्री सरोजिनी जैन और सुश्री प्रमिला भटनागर उनकी सहायता कर रही हैं।

डॉ. राम चौधरी, न्यूयार्क, विश्व हिन्दी न्यास के अध्यक्ष हैं। उन्होंने अपना जीवन पूरी तरह हिन्दी के लिए समर्पित कर दिया है। वे न्यूयार्क से "हिन्दी जगत" नामक पत्रिका का संपादन करते हैं। हर वर्ष वे हिन्दी अधिवेशन का आयोजन भी करते हैं, जिसमें पूरे अमेरिका के प्रतिनिधि भाग लेते हैं। इसमें हिन्दी कवि सम्मेलन, सांस्कृतिक कार्यक्रमों का समावेश होता है। वर्ष 2002 में "डायसपोरा" हिन्दी साहित्य विषय पर एक संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इसमें हिन्दी की प्रख्यात उपन्यासकार डॉ. सुषम बेदी, डॉ. विशाखा ठाकर, मधु महेश्वरी, डॉ. रमाकांत शर्मा, डॉ. दामोदर खड़से, धनंजय कुमार, गुलशन मधुर और डॉ. सीमा खुराना ने भाग लिया था। हिन्दी शिक्षण के संबंध में भी अधिवेशन में विचार-विमर्श किया गया। न्यास के सचिव डॉ. कैलाश शर्मा पेशे से इंजीनियर हैं, उन्होंने पूरे अधिवेशन को एक विशिष्ट ऊंचाई प्रदान की। इस अवसर पर हिन्दी के कई प्रकाशन भी उपलब्ध कराए गए। "दिशांतर" शीर्षक से एक कविता-संग्रह था, जो

अमेरिका में बसे भारतीय कवियों की हिन्दी कविताओं का संकलन है। डॉ. राम चौधरी की पुस्तक "भारतीय अस्मिता के अग्रदूत" में भारतीय महापुरुषों की जीवनी पर विशेष प्रकाश डाला गया है।

डॉ. सुषम बेदी कोलंबिया विश्वविद्यालय में हिन्दी की विभागाध्यक्ष हैं। वे हिन्दी की यशस्वी कथाकार हैं। उनके उपन्यास "हवन" ने विदेशों में बसे भारतीयों के बीच जीवन-मूल्यों के संघर्ष को बखूबी रेखांकित किया है। उनकी लगभग 10 पुस्तकें हिन्दी में प्रकाशित हो चुकी हैं और चर्चित भी रही हैं। उनका नवीनतम उपन्यास है "नवाभूम की रसकथा"। उसी विश्वविद्यालय की डॉ. अंजना संधीर का कश्मीर पर कविताओं का संकलन प्रकाशित हुआ है। गुलशन मधुर "वाइस ऑफ अमेरिका" में अधिकारी हैं। उनकी कविताओं में अत्यंत संवेदनशील विषय समेटे गये हैं। डॉ. विशाखा ठाकर का "तीसरा छल" चर्चित कविता संग्रह है। डॉ. विशाखा की कविताएँ व्यक्तिगत अनुभूतियों की सार्थक अभिव्यक्तियां हैं। विभिन्न देशों से गुजरते हुए उन्होंने अपने भीतर संपूर्ण भारतीय अनुभूतियों को समेटा हुआ है।

संभवतः यह पहला अवसर होगा, जब हिन्दी की कोई फिल्म विदेश में तैयार की गई और भारत में प्रदर्शित की गई। न्यूयार्क के कलाकारों और निर्माता-निर्देशकों ने "अमेरिकन देसी" फिल्म का वहीं निर्माण किया। उसका विषय भी अमेरिका में बसे भारतीयों के जीवन में आ रहे परिवर्तनों और पीढ़ियों का संघर्ष है।

वाशिंगटन में अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति की अत्यंत सक्रिय शाखा है। मधु महेश्वरी, गुलशन मधुर और धनंजय कुमार के नेतृत्व में इस समिति की ओर से हिन्दी दिवस, कवि सम्मेलन आदि का आयोजन किया जाता है। साथ ही, हिन्दी शिक्षण के लिए स्कूलों का संचालन भी किया जाता है। अमेरिका जैसे देश में टीवी का हिन्दी चैनल भी है। इसमें श्री व्यास की भूमिका अत्यंत सराहनीय है। अमेरिका में समाज विज्ञान की प्रोफेसर डॉ. उषादेवी विजय कोल्हटकर हिन्दी और मराठी में समान रूप से अपना लेखन कर रही हैं। उनका हिन्दी उपन्यास "जमी हुई बर्फ" अमेरिकी जन जीवन की भीतरी दास्तान है। "चाबी का गुड्डा", "अंधेरी सुरंग में", "बटर टॉफी और बूढ़ा डालर" उनके कहानी संग्रह हैं। इन संग्रहों में उन्होंने अमेरिका के घर-परिवार-समाज की घटनाओं को कथारूप दिया है।

कोलंबिया विश्वविद्यालय (अमेरिका) के हिन्दी विभाग में चर्चा के दौरान स्पष्ट हुआ कि इस विभाग में भारत, पाकिस्तान, फ्रांस, अमेरिका के छात्र हिन्दी पढ़ने आते हैं। इंदौर के महाराजा होलकर की वंशज सब्रीना होलकर, "हिन्दी और फ्रेंच भाषा का तुलनात्मक अध्ययन" विषय पर शोध कार्य कर रही हैं। साथ ही एक अमेरिकी छात्र डेरिक मिचल "भारत में धर्म और गांधी जी की सोच" विषय पर शोधकार्य कर रहे हैं। जिस अंदाज से इन दोनों छात्रों ने चर्चा में मुद्दे उपस्थित किए इससे यह स्पष्ट होता है कि हिन्दी और इसके साहित्य को लेकर वे बहुत उत्सुक और समर्पित हैं। विभाग प्रमुख के रूप में डॉ. सुषम बेदी का नेतृत्व और मार्गदर्शन बहुत सार्थकता लिए हुए था।

एक माह की अमेरिका यात्रा के दौरान वहाँ के प्रमुख नगरों से प्रवास करते हुए यह बात स्पष्ट हुई कि हिन्दी भाषा ने सभी भारतीयों को एक सूत्र में पिरोया है। अमेरिका में बेहतर आजीविका के लिए आये मूल भारतीयों में हिन्दी के उत्कृष्ट रचनाकार भी हैं। हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के बारे में उनमें गहरी उत्कंठा लगी। डॉ. विशाखा ठाकर, वरिष्ठ वैज्ञानिक हैं। साथ ही, हिन्दी साहित्य में उनकी गहरी आस्था है। हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं का अभाव, अनुपलब्धता उन्हें बहुत खलता है। उनकी रुचि को देखते हुए मैंने उनसे कहा कि इंटरनेट के इस युग में कुछ पत्रिकाएं सहज प्राप्य हैं। "वेब दुनिया" खोलने की उन्हें जानकारी दी। उनकी खुशी का ठिकाना न रहा। अब इंटरनेट के इस युग में हिन्दी, दुनिया के कोने-कोने में सहजता से उपलब्ध होती रहेगी। अपनी जड़ों से जुड़ने वालों के लिए कंप्यूटर और इंटरनेट का आविष्कार निश्चित ही वरदान सिद्ध होगा।

❑❑

हिन्दी सूफी काव्य में मानवतावाद

डॉ. अनिल राय

सूफीमत का उद्भव भले ही अरब व ईरान में हुआ, किन्तु भारत में यह परिस्थितियों के दबाव के फलस्वरूप विशेष रूप से पल्लवित और पुष्पित हुआ। आरंभ में सूफी साधकों ने वैराग्य भावना और तपोमय जीवन की ओर ही अधिक ध्यान दिया, किंतु परवर्ती सूफी साधकों व कवियों ने समाज सापेक्ष होकर विश्व मानवता की भावना का प्रसार किया। निर्गुण संतों की भाँति साधना के लिए उन्होंने मानवमात्र में भेदभाव को त्यागकर मानवीय प्रेम पर बल दिया। हिन्दी के प्रसिद्ध सूफी कवि जायसी ने तो 'पदमावत' में स्पष्ट कहा–

'मानुष पेम भएउ बैकुंठी, नाहिं तकाह छार एक मूँठी।' अर्थात् मनुष्य प्रेम के कारण ही वैकुण्ठ के योग्य हुआ है, अन्यथा जीवन में है ही क्या–मुट्ठी भर राख। जायसी की समूची साधना ही प्रेम की साधना है। 'पदमावत' का नायक (रत्नसेन) इसीलिए 'मरजीवा' बनता है और प्रेम के उत्स समर्पण द्वारा 'परम सत्ता' रूपी पदमावती को प्राप्त करता है। समूचे काव्य में जायसी इस बात का संकेत करते हैं कि प्रेम ही वह तत्त्व है जिसके माध्यम से जीवन धन्य बन सकता है। चरम मूल्य ही प्रेम है और उसे पाने के लिए सर्वस्व समर्पण करना पड़ता है। रत्नसेन सर्वस्व समर्पित करता है और उसे 'परम प्रेम' प्राप्त होता है। दूसरी ओर अलाउद्दीन है जो समर्पण का रास्ता न अपनाकर बल-वैभव के माध्यम से 'परम प्रेम' रूपी

पदमावती को पाने की कोशिश करता है, फलतः उसे (उसकी) 'राख' मिलती है। फिर, वह जीवन के चरम सत्य को यूँ परिभाषित करता है–'छार उठाइ लीन्ह एक मूँठी, दीन्ह उड़ाइ पिरिथिमी झूठी।' भस्मीभूत पदमावती की राख मुट्ठी में लेकर वह जीवन के ठोस वस्तु सत्य का उद्घाटन करता है–सब व्यर्थ है, यदि प्रेम (मानवीय संवदेना) नहीं है।

जायसी ने प्रेम के दर्शन को बड़ी सूक्ष्मता और मनोवैज्ञानिकता के साथ व्यक्त किया है। मानवीय चेतना के रूप में 'प्रेम' एक बहुत बड़ा मानव मूल्य है और मध्यकाल के सभी भक्त कवियों ने इस मूल्य चेतना को आत्मसात् करने का प्रयास किया है। कबीर ने तो यहाँ तक कहा है कि प्रेम का घर बड़ा कठिन है, यह कोई मौसी का घर नहीं कि जब चाहे उसमें प्रवेश कर जाओ। इस घर में प्रवेश करने के लिए 'सिर' देना पड़ता है, अर्थात् मरकर जीना पड़ता है, (मरजीवा बनना पड़ता है) तभी इस घर में प्रवेश मिल सकता है–

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस कटाए भुईं धरै, सो पैठे घर मांहि।।

कबीर ज्ञान के साधक थे और ज्ञान की साधना में प्रेम सहायक होता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है "विवेक और वैराग्य की दृढ़ता केवल प्रेम से ही संभव है। प्रेम तत्त्व के अभाव में वैराग्य और विवेक देर तक नहीं टिक पाते।" दरअसल, प्रेम के लिए विवेक भी उतना ही महत्वपूर्ण है। लौकिक जीवन में भी देखें तो विवेक प्रेम को मानवीय और पवित्र बनाता है, अन्यथा वासना की छाया से वह मुक्त नहीं हो सकता। इसीलिए सूफी कवियों ने प्रेम को सकर्मक और ज्ञानात्मक बनाया है।

मानव शरीर के भीतर जो चित् तत्त्व है उसका संयोग क्षणिक और अस्थायी होता है, इसीलिए आसक्ति, आतुरता और व्याकुलता भी क्षणिक और अस्थायी होती हैं। वे नाशवान हैं। इसीलिए शाश्वत सुख को देने में असमर्थ हैं, किंतु जब यह आसक्ति जड़ आवरण के अंतराल में स्थित चित् तत्व को गहराई से प्रभावित करती है तो वह सुख स्थायी और शाश्वत होता है। सूफी साहित्य उसी शाश्वत के संधान में अपने को संदर्भवान बनाता है।

मनुष्य में जो त्रुटियाँ और कमियाँ हैं उनको भरने में एक मात्र भगवान ही समर्थ है। भक्तों ने संकेत किया है कि वह समर्थ भगवान केवल भाव का भूखा है।

उसे जिस भाव में देखा जाएगा उसी रूप में मिलेगा। सूफी संतों ने उसे 'प्रेमिका' के रूप में देखने का प्रयास किया, जबकि निर्गुण संतों ने उसे 'प्रेमी' के रूप में देखा। जायसी आदि सूफी कवि उसे अल्लाह का नूर कहते हैं जिसे पाने के लिए बड़ी साधना करनी पड़ती है—'तपन मृगसिरा जो सहै, सोइ आद्रा पलुहंत।' आर्द्रा रूपी प्रेम-जल पाना है तो मृगशिरा नक्षत्र की तपन को सहना पड़ेगा। यह सूफियों का कर्म सौन्दर्याद्भूत प्रेम था, अतः वह सामान्य नहीं था।

जामी नामक सूफी कवि ने कहा था—"मैं वही हूँ जिसे मैं प्यार करता हूँ और जिसे प्यार करता हूँ वह मैं ही है। एक शरीर में वास करने वाले हम दो प्राण हैं।" यदि ध्यान से देखा जाय, तो चाहे निर्गुण संत हों या सूफी कवि, सबने अपने काव्य में अद्वैतभाव को दर्शाने की कोशिश की है। इसके लिए उन्होंने भारतीय साधना के महत्वपूर्ण योग सिद्धांत को आधार बनाया है। कबीर और जायसी दोनों ने ही हठयोग का उपयोग अपने-अपने ढंग से किया है। आत्मा-परमात्मा के एकत्व की अनुभूति को साकार बनाने के लिए कबीरदास 'इंगला-पिंगला' का 'ताना-बाना' बुनते हैं और जायसी का रत्नसेन षट्चक्र का भेदन कर परमतत्व को प्राप्त करने का प्रयास करता है। नागमती और पदमावती जब आपस में 'नारी सुलभ' द्वेष करती हैं तो रत्नसेन क्रमशः उन्हें इड़ा-पिंगला के रूप में प्रतिष्ठित करता है और दोनों का महत्व प्रतिपादित करता है।

मनुष्य के जितने भी अंतः वैयक्तिक सम्बन्ध हो सकते हैं उनमें सबसे सशक्त और मार्मिक सम्बन्ध प्रिया-प्रिय सम्बन्ध है। व्यक्त जगत में विशुद्ध स्त्री या विशुद्ध पुरुष नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति में ये तत्त्व एकमेक होकर गुँथे हुए हैं। केवल मात्रा की कमी या अधिकता के कारण व्यक्त जगत में स्त्री-पुरुष के रूप में अभिव्यक्ति होती है। जिसमें शक्ति तत्व अधिक होता है वह व्यक्त जगत में स्त्री रूप में प्रकट होता है और जिसमें शिव तत्व अधिक होता है वह पुरुष रूप में प्रकट होता है। समष्टि रूप में व्यक्त जगत शिव और शक्ति का सम्मिलन रूप है, वही अर्द्धनारीश्वर का रूप है जिसे बौद्ध साधकों ने 'युगनद्ध' रूप में देखा है। सूफी साधकों की साधना-पद्धति पर इस युगनद्ध भाव का प्रभाव स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है। इस साधना-पद्धति में मनुष्य मात्र के चित् को विशद और सार्वभौम बनाने की चेष्टा की गई है। प्रसिद्ध सूफी बायजीद ने कहा है कि परमात्मा जिसे प्रेम करता है उसे तीन गुणों से विभूषित करता है—"उसमें समुद्र जैसी उदारता, सूर्य जैसी पर दुःखकातरता और पृथ्वी की तरह विनम्रता पाई जाती है।"

सूफी साधना अनेकविध भारतीय साधना से परिबद्ध है। उसने भारतीय साधना को बहुत कुछ दिया है तो बहुत कुछ लिया भी है। जायसी आदि ने तो उसे पूरी तरह से भारतीय रंग में ढाल दिया है। बल्कि यूँ कह सकते हैं कि जायसी ने इस प्रक्रिया में अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है। यहाँ तक कि कबीरादि की भाँति उन्होंने इस्लाम की तमाम बाह्याचारिता को एक सिरे से नकार दिया है। अपनी काव्यात्मक और आध्यात्मिक प्रतिभा के बल पर उन्होंने शाहेवक्त पर भी तीखा व्यंग्य किया है जब उनकी कुरूपता को देखकर बादशाह ने हँस दिया था। जायसी ने कहा—'मुझ पर हँस रहे हो या उस कुम्हार पर जिसने मुझे बनाया? (मो पे हँसहिं कि कोहरहिं!) अन्ततः बादशाह को माफी माँगनी पड़ी।

वास्तव में सूफियों और संतों ने मानव मूल्यों को ही अपनी साधना का आधार बनाया। वे उसी के लिए जिये और उसी के लिये मरे। लौकिक प्रेम के माध्यम से आध्यात्मिक प्रेम का संदेश पहुँचाने वाले इन संतों-सूफियों ने 'कुरान' और इस्लाम की सीमाओं का भी अतिक्रमण किया। परमात्मा को पाने की आतुरता और मनुष्य मात्र में समानता का संदेश संचरित करने की मूल भावना उनकी अपनी है और वही उनकी साधना की मूल भावभूमि भी है। उनका मानना है कि मनुष्य मात्र से प्रेम करना ही उस परमात्मा की परम साधना है।

सूफी साधक प्रेम के द्वारा सांसारिक माया-मोह त्यागने की बात कहते हैं। साधक के हृदय में जब मानवीय प्रेम का उदय होता है तो प्राणिमात्र के प्रति वह सहृदय हो उठता है। तब सांसारिक वस्तुएँ उसके लिए तुच्छ हो जाती हैं। स्व पर की सीमा से ऊपर उठकर सूफी कवियों ने मनुष्य मात्र के कल्याण की बात की है। यही कारण है कि मध्यकालीन समाज में धर्म और साम्प्रदायिक ऐक्य व सामंजस्य बनाये रखने के लिए हिन्दी के अधिकांश सूफी कवियों ने हिन्दू प्रेम कथाओं को रचना का आधार बनाया। इन कथाओं में अनेक पौराणिक संदर्भों का उल्लेख मिलता है। उदाहरण के लिए 'पदमावत' में नागमती अपने पति से वियुक्त करने वाले हीरामन की तुलना (छलिया) इन्द्र से करती है—'करन बान लीन्हेहु करि छंदू, भा भएउ छल मिला इंदू।' कुतुबन कृत 'मृगावती' में प्रलय का संदर्भ मिलता है—

'घन बरसहिं अति कही न जाई, परलौ जैस रहा जग छाई।'

इसी प्रक्रिया में सूफियों ने मुहम्मद साहब के साथ-साथ अन्य अवतारों को भी सम्मान की दृष्टि से देखा क्योंकि मंदिर और मस्जिद का भेद उनके लिए नहीं रह

गया था। बुल्लेशाह ने परमात्मा को सबके भीतर देखा, इसलिए सबको सम्मान की दृष्टि से देखने के लिए अनुप्रेरित किया–

'सैयो हुन साजन मैं पाइयो,
हर हर दे विच समाइयो।'

संक्षेप में, अपनी सीमाओं और संभावनाओं में सूफी कवियों ने अपने काव्य में जिस विश्व मानवता का संचार करने का प्रयास किया, वह भारतीय चिंतन-परम्परा से पूरी तरह परिबद्ध है। उसमें बुद्ध की मानवीय करुणा है और 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' जैसे बुद्ध-वचनों में निहित विराट विश्व मानवता की भावना है जो भारतीय संस्कृति का मूलाधार है। जायसी के शब्दों में प्रेम का मार्ग कठिन अवश्य है पर उससे इहलोक और परलोक दोनों में मुक्ति मिलती है 'भलेहि पेम है कठिन दुहेला, दुइ जग तरा पेम जेइँ खेला'। आज के उत्तर आधुनिक समाज में भी सूफियों का यह मानवतावाद जीवन को जीने योग्य बनाता है अतः वह कालातिक्रमित और सर्वथा प्रासंगिक भी है।

❑ ❑

तेलुगु की प्राचीन कविता का हिन्दी काव्यानुवाद : सिद्धांत व प्रयोग के संदर्भ में

प्रो. पी. आदेश्वर राव

देश-कालगत भिन्नता के अनुरूप मानवीय अनुभूतियों, भावनाओं तथा विचाारों में भी भिन्नता आ जाती है। साहित्य-क्षेत्र भी इसका अपवाद नहीं है। वैचारिक एवं सांस्कृतिक भिन्नता को अभिव्यक्त करने के कारण साहित्य की अनुभूति एवं अभिव्यक्ति में भी यह भिन्नता देखी जा सकती है। कवि की अनुभूतियाँ भाषा के माध्यम से मूर्त हो उठती हैं। किन्तु अन्य भाषा-भाषियों तक वह अपनी अनुभूतियों को संप्रेषित नहीं कर पाता। यहाँ भाषा कवि और पाठक के बीच अबोधता की दीवार खड़ी कर देती है। भाषा की इस दीवार को गिरा देना ही अनुवाद का कार्य है। अनुवाद में भाषागत व कालगत सीमाओं को लांघने की असीम क्षमता है। यह क्षमता अनुवादक की योग्यता तथा उसकी भाषा-सामर्थ्य पर निर्भर रहती है। सफल अनुवाद के लिए मूल भाषा और अनुवाद की भाषा-दोनों में अनुवादक की गति अनिवार्य़ है। अनुवादक को निश्चित रूप से दोनों भाषाओं पर समान अधिकार होना चाहिए और यह अधिकार उसके वर्षों के श्रम और अभ्यास से ही संभव है। काव्यानुवाद अपने में एक स्वतंत्र कला है। मूल काव्य का

अनुवाद छन्दोबद्ध हो तो वह कार्य और भी दुस्तर है। काव्यानुवादक में प्रतिभा एवं दायित्व का होना अनिवार्य है क्योंकि काव्यानुवाद मूल काव्य का पुनःसृजन है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि एक भाषा के काव्य-माधुर्य, उद्वेग एवं आंतरिक उल्लास को तथा कवि के रचना-कौशल को दूसरी भाषा में कुशलता पूर्वक व्यक्त करने की यह प्रक्रिया कृति विशेष का पुनर्निर्माण है। एक सफल काव्यानुवाद की सब से सरल परीक्षा यह है कि वह काव्यानुवाद होते हुए भी मौलिक काव्य-रचना के सौष्ठव, सौन्दर्य एवं उदात्त तत्व से समन्वित हो। अनुवाद कला का एक पक्ष यह भी है कि श्रेष्ठ काव्यानुवाद केवल सीधा अनुवाद नहीं होता, अपितु वह मूल कृति की आत्मा का सफल प्रत्यक्षीकरण होता है। इसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक शब्द के लिए समान शब्द ढूंढ़ा जाये। शब्दानुवाद गद्य के क्षेत्र में चल भी सकता है परन्तु काव्यानुवाद में नहीं। काव्यानुवाद के लिए यह आवश्यक है कि अनुवाद भावानुसार हो। काव्यानुवाद का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि कविता की आत्मा को आत्मसात कर उसकी विशुद्ध कल्पना एवं अनुभूति के साथ अनुवादक को तादात्म्य एवं सामंजस्य स्थापित करना आवश्यक है। तभी काव्यानुवाद मूल कृति का स्पंदनशील प्रतिरूप बनता है। इस दृष्टि से अनुवादक एक स्वतंत्र स्रष्टा है। कभी-कभी काव्यानुवाद मूल की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली और मनोहारी बन जाता है। यह तभी संभव है जब अनुवादक प्रतिभावान, अनुभूतिप्रवण और रचना-कौशल-संपन्न हो।

गुण एवं मात्रा की दृष्टि से तेलुगु से हिन्दी में अनुदित प्राचीन कविता की उपलब्धियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। इस तथ्य को दृष्टि में रखकर यहाँ पर सिद्धांत एवं प्रयोग के संदर्भ में इन काव्यानुवादों पर मैं अपने विचार प्रस्तुत करना चाहता हूँ।

यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि तेलुगु की कतिपय प्रतिष्ठित प्राचीन काव्य-कृतियों का सफल हिन्दी काव्यानुवाद प्रस्तुत किया गया है। सिद्धांत एवं प्रयोग के संदर्भ में इन अनुदित कृतियों को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है–

1. तेलुगु के प्राचीन प्रबंध काव्यों का हिन्दी काव्यानुवाद।
2. तेलुगु के प्राचीन पदों व गेय मुक्तकों का हिन्दी काव्यानुवाद।
3. तेलुगु के प्राचीन नीतिपरक मुक्तकों का हिन्दी काव्यानुवाद।

आलेख की सीमा को दृष्टि में रखते हुए मैं इन वर्गों के प्रतिनिधि काव्यानुवादों का ही उल्लेख करना उचित समझता हूँ।

अनूदित प्रबंध काव्यों में तेलुगु के भक्त कवि पोतना के भागवत के चार प्रसंगों का काव्यानुवाद श्री वारणासि राममूर्ति रेणु ने "भागवत परिमल" शीर्षक कृति में किया है। इन पंक्तियों के लेखक ने भी उक्त भागवत के चार प्रसंगों का काव्यानुवाद "चतुष्पथ" के नाम से किया है। श्री वड्डिपर्ति चलपतिराव की अनूदित काव्य-कृति "प्रवर" तेलुगु के महान् कवि पेद्दना के "मनु चरित्र" प्रबंध काव्य का हिन्दी रूपांतर है।

दूसरे वर्ग के अंतर्गत डॉ. इलपावुलूरि पांडुरंगराव और डॉ. सी. रामुलु ने तेलुगु के भक्त कवियों के पदों का हिन्दी काव्य रूपांतर प्रस्तुत किया है। डॉ. पांडुरंगराव ने तेलुगु के भक्त कवि त्यागराज के पदों का अनुवाद "त्यागराज के पद" शीर्षक के अंतर्गत तथा डॉ. सी. रामुलु ने तेलुगु के प्रमुख पदकार अन्नमाचार्य के पदों का अनुवाद "अन्नमाचार्य के संकीर्तन" शीर्षक के अंतर्गत किया है।

तीसरे वर्ग के अंतर्गत तेलुगु के नीति मुक्तक के हिन्दी काव्यानुवादों में उल्लेखनीय हैं–श्री दुव्वूरि रामकृष्णमूर्ति का "संत वेमना", डॉ. सर्यूनारायण भानु" का "वेमना की वाणी" और माधवराव रेगुलपाटि का "वेमना सूक्ति-सुधा"। इन अनुवादकों ने तेलुगु के प्रसिद्ध संत कवि वेमना के नीतिमुक्तकों के अनुवाद से हिन्दी काव्य-साहित्य को समृद्ध बनाया है। श्री सुंकर चेंगय्या ने तेलुगु के प्रसिद्ध "नीति शतक" "सुमति शतक" का काव्यानुवाद "सुमति की सूक्तियाँ" शीर्षक कृति के रूप में प्रस्तुत किया है।

आन्ध्र प्रदेश में पोतना कृत "आन्ध्र महाभागवतम्" अत्यंत लोकप्रिय रचना है। यद्यपि यह कृति संस्कृत के "श्रीमद्भागवत्" का तेलुगु रूपांतर है, फिर भी पोतना की प्रतिभा और भक्ति की तीव्रता में इसमें मौलिक रचना का-सा स्वाद भर दिया है। इसके हिन्दी काव्यानुवाद में अनुवादक वारणासि राममूर्ति रेणु ने वस्तु एवं रस के अनुकूल शैली-विन्यास किया है। उनका यह काव्यानुवाद मूल के अत्यंत निकट है। उन्होंने कई स्थानों पर मूल में प्रयुक्त शब्दावली का अत्यधिक प्रयोग किया है जिसमें वस्तु के साथ मूल भाषा की भी झांकी मिलती है। पोतना की उदात्त भावभूमि की रक्षा करने के लिए ऐसा करना अनिवार्य हो गया है। "रेणु" जी की अनुवाद-क्षमता से अवगत होने के लिए एकाध उदाहरण पर्याप्त है। भागवत के

"वामन चरित" के प्रसंग में राजा बलि वामन को तीन चरणों का दान देकर अपना वचन निभाते हैं तो वामन ने अपने विराट रूप को धारण किया। वामन के विराट रूप के विकास का गतिशील बिंब काव्यानुवाद में इस प्रकार प्रकट हुआ–

"इस प्रकार भूमिदान, स्वीकृत कर तब राजन
इतना सा बौना वह डेढ़ हाथ का बौना।
इतना बन, इतना बढ़ उतना चढ़, नभ पथ पर
घन-मंडल के ऊपर, प्रभापुंज को ढकेल
पीछे अपने, शशि का लंघन कर लाघव से,
धृव पद सर्वोन्नत का अतिक्रमण कर शर-सा,
महर्लोक पर चढ़, बढ़ सत्यलोक से दृततर,
ब्रह्माण्ड-कटाह फोड़, सीमाएँ सभी तोड़,
बढ़ता ही चला गया। चढ़ता ही चला गया।

तदनु, परीक्षितं! सुन लें–
रविबिंब बना पहले प्रभु का सित योग्य छत्र,
तदनंतर शिरोरत्न, कर्णफूल, कंठरत्न
कांचन केयूर कांति-मान भव्य कर कंकण,
कमनीय कटि प्रदेश पर घंटा छवि पावन,
ठिगने से बौने का फिर नूपुर जाल बना।
बना वही सूर्य बिंब जग में सर्वत्र व्याप्त
ब्रह्मचारि का अद्भुत पादपीठ प्रभादीप्त।
त्रिगुणात्मक विष्णुदेव, धर विराट विश्व रूप
बने त्रिविक्रम तो, भू, नभ, दिव, दिशि, दिशाछिद्र,
सागर, चल जीवजंतु बने एक मात्र आप।
भूमि गोल से कढ़कर, भुवर्लोक पर चढ़कर,
सुवर्लोक से बढ़कर, महर्लोक, जनोलोक,
तपोलोक, सत्यलोक सबसे बढ़ चढ़ ऊपर
सब के हो, परे, पार, फैले नीरंध्र निबिड
अंतराल में, विशाल देह लिए अति कराल।"

रेणु जी का यह काव्यानुवाद महाकवि पोतना के मूल के समान प्रभावशाली बन पड़ा है। मात्रिक छन्दों के प्रयोग के कारण काव्य-प्रवाह विराट गत्यात्मक बिंब तथा अद्‌भुत रस की सृष्टि में समर्थ हो गया है।

इन पंक्तियों के लेखक ने भी इसी अनुवाद की प्रणाली को अपनाकर मात्रिक छन्दों में भी पोतनाकृत भागवत के चार प्रसंगों का काव्यानुवाद प्रस्तुत किया है। जिनमें "सुदामा चरित" तथा "रुक्मिणी विवाह" की कुछ पंक्तियों को उद्‌धृत करना चाहता हूँ।

बाल सखा सुदामा के आगमन पर श्री कृष्ण ने जो स्नेह एवं आदर उन्हें प्रदान किया उसका वर्णन इन पंक्तियों में अंकित किया गया है—

"तब कृष्ण विप्र के फांस गये हर्षातिरेक में
और किया आलिंगन पाकर स्नेह बन्धु में
शैशव की स्मृतियों में खोया हरि ने सत्वर
उसे समादर बिठा लिया निज शयन तल्प पर।

इस तरह बिठाकर भूसुर को हरि ने अमित स्नेह से
धोये उन के चरण-युगल तब अतुलित भक्ति भाव से
घनसार और मृगमद मिश्रित कनक कलश के जल से
और किया अभिषेक शीर्ष का पद्‌गत सलिल विमल से।

ताल-वृंत को हिला-डुलाकर हरी थकावट हरि ने
मलयानिल तब बहा निकलकर मोद विप्र में भरने
बंधूक कलित वर धूपों से भूसुर की पूजा कर के
मणि दीपों की आरती उतारी हरि ने उमंग भर के।।"

"रूक्मिणी विवाह" के प्रसंग में पोतना ने रूक्मिणी के तारूण्य को श्री कृष्ण की कामना के अनुरूप विकसित होने के गतिशील चित्र का अंकन किया है जिसका हिन्दी काव्यानुवाद इस प्रकार है—

"देवकी-तनय के मन में ज्यों-ज्यों कामना लहराती थी
त्यों-त्यों देह-लता उस बाला की झूम-झूम इठलाती थी,
ज्यों कमलनाथ का चित्त-कमल सुरभित-विकसित हो जाता था
त्यों कन्या के मुख-नीरज पर आलोक वेग से बढ़ता था,

मधुरिपु के उर के काम-ताप से युवती के उरोज उभरे,
उधर श्याम का धैर्य क्षीण हो पतला होकर सिमट गया जब
इधर वाम की कटि पतली हो छवि अपनी दिखलाती थी तब
यदुनन्दन का ममता-बंधन जब अधिक तीव्र हो जाता था
तब बाला का वेणी-बंधन नयनाभिराम-सा लगता था
कमल नयन में गोद भरा तो तरूणी में तारूण्य भरा था।"

इस काव्यानुवाद में पोतना की क्लिष्ट अभिव्यक्ति को उनकी शब्दावली और शैली में ही व्यक्त करने की चेष्टा की गयी है।

पोतना के इन काव्यानुवादों में दोनों अनुवादकों ने मूल काव्य की वस्तु एवं रस को सुरक्षित करने का प्रयास किया है।

महाकवि वेमना के "मनु चरित्र" का हिन्दी काव्यानुवाद श्री वड्डिपति चलपासराव ने अत्यंत सुंदर रूप से किया है। उन्होंने रसानुकूल छन्दों का प्रयोग करते हुए मूल काव्य की पुनः सृष्टि करने का सफल प्रयास किया है। "प्रवर" (मनु चरित्र) का आरंभ अरूणास्पद नगर-वर्णन और उसमें निवास करने वाले भूसुरोत्तम प्रवर के वर्णन के साथ इस प्रकार होता है–

"वरुणा-म्रवंती के तटांचल में बसा
अरुणास्पद नगर, आह यों छवि से लसा
मानों "तरल" भू-कंठ-मुक्ता-दाम का
शुभधाम आर्यावर्त देश ललाम का
वप्रस्थली आकाश में यों लग रही
भू-स्वर्ग की ज्यों प्रणय लीला जग रही
सौधावली अपनी सुधा-छवि से नवल
विधु बीच की मृग-कालिमा करती धवल
पुर-विभव-छवि में चार चाँद लगा दिये
द्विजवर प्रवर ने पुण्य-भाग्य जगा दिये
शिव तरूण-सा वह, तनु-विलास अनूप था
मकरांक और शशांक का-सा रूप था।
था शेष भोगी अपर भाषा-मर्म में
रत विविध निर्मल कर्म, वैदिक धर्म में

स्मर बाण कुंठित वज्र सम-शम-वर्ग में
था ब्रह्मकुल भूषण, स्वयं वपु-मर्म में"

यहाँ पर काव्यानुवाद की भाषा कहीं कामायनीकार की, कहीं साकेतकार की, कही मानसकार की याद दिलाती है।

तेलुगु के काव्य-साहित्य को त्यागराज और अन्नमाचार्य जैसे भक्तों ने अपने पदों से समृद्ध बनाया है। डॉ. इ. पांडुरंगराव ने त्यागराज के कई पदों का अत्यंत प्रभावशाली एवं रसात्मक काव्यानुवाद प्रस्तुत किया है। हिन्दी के मात्रिक छन्दों पर असाधारण अधिकार के कारण उन्होंने इस अनुवाद के द्वारा त्यागराज के पदों की पुनःसृष्टि की है। पदों की प्रवाहमयता, स्निग्धता एवं प्रभावोत्पादकता के दर्शन हर अनूदित पद में होते हैं। उनके एक ऐसे पद को उद्धृत् करता हूँ जिसमें भगवान के प्रति भक्त का उपालंभ भरा हुआ है—

"माँग लिया जिस जिसने तेरे पास प्रभो क्या पाया ?
जन संसृति का तिमिर मिटाने भास्कर बनकर आया।।
जनक-नंदिनी प्राण प्रिया ने वन-विहार वर माँगा।
पर पूरा निर्वासन पाया, पाया मूल्य महँगा।।
असुर भामिनी शूर्पणखा ने तन माँगा मन देकर।
नाक कटी उस की, वही भागी भाई के घर रोकर।।
नारद के मन में भी उपजी इच्छा एक अनोखी।
पाई उसने नारी की छवि और साठ सुत साखी।।
दुर्वासा ने खाना माँगा अपच रोग से भागा।
सुत चाहा वसुदेव सती ने नंद बना बड़ भागा।।
ब्रज बालाएं भोली भाली न्योछावर कर तन मन।
घर से, कुल से, पति के मन से अलग हो गई सिर धुन।।
पता चला अब कोई तेरा रीति-रिवाज़ नहीं है।
जब जिस पर जैसा दिल तेरा उसका भाग्य खुला है।।
इसी भरोसे रहता हूँ मैं कभी खुले दिल तेरा।
त्यागराज प्रभु की सम्मति से खिले सुमन यह तेरा।।"

कहने की कोई आवश्यकता नहीं कि पाण्डुरंगराव के काव्यानुवाद ने मूल पद के रस का संवर्द्धन किया है।

डॉ. सी.एच. रामुलु के "श्री अन्नमाचार्य के संकीर्तन" शीर्षक पद्यानुवाद में भक्त और पदकार अन्नमाचार्य के कई गीतों की छटा उभर आयी है। यह भी काव्यानुवाद के क्षेत्र में स्तुत्य प्रयास है। एक पद का काव्यानुवाद द्रष्टव्य है–

"कामिनी सुरुचिर काम यजन रचाती
देवता प्रीति को प्रेम भेंट चढ़ाती।

सुरति मधुर तम्बूल रस पान कराती,
नलिन नयना चषक सोम रस पिलाती।
सुमधुर कल गीत श्रवण सुखद सुनाती
शुभद वेदमंत्र सामगान ऋचाती।

विरह ताप जनित प्रबल अग्नि जुटाती
होमाग्नि में निज प्रेम ताप तपाती।
सुरति समरत जनित श्रमजल समाती,
अवभृथ कर तन मन पुनीत, लजाती।
रुचिर कुचयुग दन्तक्षत केलि रमाती।
शोभित पषु बन्धन निज रूप बँधाती।
वेंकटेश के अंक पीठ सुख लुटाती,
धन दिव्य भोग में निज को समाती।।

तेलुगु के प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य में मुक्तक साहित्य की भरमार है। तेलुगु में सौ से अधिक मुक्तकों को शतक कहा गया है। इन शतकों में नीति पर अधिक बल दिया गया है। तेलुगु साहित्य में "वेमना शतक" (यद्यपि वेमना के नीतिपरक छन्द तीन हजार से अधिक हैं) और "सुमति शतक" की लोकप्रियता सर्वाधिक है। प्रत्येक तेलुगु भाषा-भाषी की जिह्वा पर इन के छन्द थिरकते रहते हैं।

हिन्दी में संत वेमना के छन्दों के तीन काव्यानुवाद मिलते हैं। उनके पहले अनुवादक हैं दुव्वूरि रामकृष्णमूर्ति। उन्होंने वेमना के छन्दों का अनुवाद दोहे छन्द में किया है। इससे भाव-व्यक्तिकरण में उन्हें बड़ी सफलता मिली है। इसका मुख्य कारण यह है कि हिन्दी में अधिकांश नीतिपरक मुक्तक दोहों में ही प्रकट हुई हैं। वेमना के कुछ छन्दों का काव्यानुवाद दर्शनीय है–

"कुल के इक गुणवान से, कुल शोभित हो जाय।
ज्यों इक चंदन विटप से, वन सुरभित हो जाय।।

उत्तम भी खल संग में, करता है निज हानि।
ताड़ तले पय ही पिये, फिर भी मिलती हानि।।

देखो लौन कपूर का, रूप एक रुचि भिन्न।
इसी ढंग नर कोटि में, पुण्य पुरुष तो भिन्न।।
डिंभ वचन खल का सदा, धीर सुजन का बोल।
कंचन कांसा-सा कभी, क्यों दे ऊँचा बोल।।

बाद में वेमना के दो और काव्यानुवाद प्रकाशित हुए हैं। डॉ. माधवराव रेगुलपाटि ने अपने ग्रन्थ "वेमन सूक्ति सुधा" में वेमना के दो सौ छन्दों का काव्यानुवाद प्रस्तुत किया है जो अत्यन्त श्लाघ्य है। डॉ. माधवराव ने प्रत्येक छन्द का अनुवाद चार पंक्तियों में किया है जैसे मूल में वेमना ने "आटवेलदि" और "तेटगीति" छन्दों में सूक्तियाँ लिखीं तो उनका काव्यानुवाद दो दोहा छन्दों को मिलाकर माधवराव ने किया है। उनके कुछ अनूदित छन्द द्रष्टव्य हैं—

"साधन कर के राग को संवार सकते ठीक
खाते-खाते नीम भी हो जाता है पाक
साधन से इस अवनि पर सब हो जाते ठीक
विश्व अभिराम। सुन रे वेमा। ज्ञान निधान।।

दोष बताने के मनुज करोड़ लोग
इस अवनि पर जन-जन के अनेक होते दाग
बतलाते हैं अन्य के, भूले खुद के दाग
विश्व अभिराम। सुन रे वेमा। ज्ञान निधान।।

पिंडों को तैयार कर, पितरों को कर याद
कौओं के लिए कौर सब देते भर कर गोद
कौए को निज पितर-सा कैसे जगजन मान
विश्व अभिराम। सुन रे वेमा। ज्ञान निधान।।"

माधवराव के काव्यानुवाद में स्पष्टता, प्रवाहमयता और मूल के प्रति निष्ठा शब्द-शब्द पर मिलती है। डॉ. सूर्यनारायण भानु ने भी अपनी "वेदना की वाणी" का प्रकाशन कराया। उन्होंने सोलह मात्राओं वाले मात्रिक छन्दों (अधिकतर चौपाइयों) का प्रयोग वेमना के छन्दों के अनुवाद के लिए किया है। कुछ उदाहरणों से काव्यानुवाद का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है—

"पत्नी छोड़ परायी पीछे
पड़ता है सौ पागल जीने
फसल छोड़ जो पकी खेत की
खेत में बचे दाने बीने।
विश्व अभिराम। सुनो वेमना।।

अटका रोड़ा चप्पल में जो,
कान भिनकती मक्खी पल पल,
रेनु नयन का कांट पैर का
झगड़ा घर का करते विहूवल।
विश्व अभिराम सुनो वेमना।।

डॉ. भानु ने भी अपने अनुवाद में वेमना की वाणी को मुखरित करने का सफल प्रयास किया है। यहाँ इतना ही कहा जा सकता है कि वेमना के छन्दों के आरंभिक दोनों अनुवाद उत्तम इसलिए बन पड़े हैं कि उनमें हिन्दी भाषा के मुक्तकों के लिए सहज रूप में प्रयुक्त होने वाले दोहा छन्द का प्रयोग किया गया है।

वेमना की सूक्तियों के पश्चात् "सुमति की सूक्तियों" का भी हिन्दी काव्यानुवाद हुआ है। श्री सुंकर चेंगय्या ने भी दोहे छन्द में ही यह अनुवाद कार्य निभाया है। उनका यह प्रयास अत्यन्त सफल सिद्ध हुआ है। कुछ अनूदित सूक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

"बन्धु काम का जो न हो भजे न रीझै दैव
रण में चले न अश्व जो सुमति तजो सदैव।।

सुमति कमाऊ पुरुष से दबती है स्त्री, काश
बंद कमाई हुई, तो वह कहती जिंदा लाश।।

संगति से है तुच्छ की सुमती, हानि अपार
खटमल-संगी खाट को सहना पड़ता मार।।

सुमति विषैला सर्पमुख बिच्छू का डंक मात्र
खल का निशान एक है विषमय है सब गात्र।।

सुमति कोप ही शत्रु है, क्षमा त्राण है आप
दया बंधु, संतोष ही स्वर्ग, नरक संताप।।"

यहाँ पर ध्यान देने की बात यह है कि काव्यानुवाद के अवसर पर सभी अनुवादकों ने हिन्दी भाषा की प्रकृति के अनुरूप अधिकतर मात्रिक छन्दों का ही प्रयोग किया है। जिसके कारण इनके अनुवाद अत्यंत सफल सिद्ध हुए हैं। इन अनुवादकों ने काव्यानुवाद के शिल्प पक्ष को भावाभिव्यंजना का प्रमुख आधार माना है। उन्होंने अनुवाद में मूल पाठ की वस्तु, रस एवं शैली को भी हिन्दी भाषा की प्रवृत्ति के अनुरूप प्रस्तुत कर उस के उदात्त पक्ष की रक्षा की है। ये अनुवादक स्रोत भाषा तेलुगु की संपूर्ण अर्थच्छवियों को लक्ष्य भाषा हिन्दी में ले आने में सफल हुए हैं। इन्होंने मूल कविता में व्यंजित सांस्कृतिक पक्ष के औन्नत्य को उसकी समग्रता के साथ अंकित किया है। इन्होंने अनुवाद में शब्द-चयन एवं छंद-चयन के संदर्भ में विशेष सतर्कता बरती है।

उपर्युक्त काव्यानुवादों में अनुवाद के सैद्धांतिक व व्यावहारिक पक्षों के निर्वाह में अनुवादकों की कुशलता प्रमाणित हुई है।

आचार्य पद्मसिंह शर्मा के पत्रों में व्यंग्य-विनोद

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल

आधुनिक विकसित कलाओं के समान ही पत्र-लेखन एक भावपूर्ण और व्यक्तित्व का सहज ही आभास देने वाली कला है। अपने साधारण जीवन में अथवा भाषण और लेखों के माध्यम से किसी व्यक्ति, नेता या लेखक का जो चरित्र और स्वभाव अप्रकट रह जाता है, वह इष्ट-मित्रों, सगे-संबंधियों आदि को लिखे गए पत्रों में, अनजाने ही प्रकट हो जाता है। 'ये निजी चिट्ठियाँ ही, जिनमें हृदय खोलकर बातें की जाती हैं, लेखक के वास्तविक व्यक्तित्व की परिचायक हैं। किसी विशेष स्थिति, प्रसंग या घटना के संबंध में, किसी के हृदयगत भाव जानने हों तो उसके निजी पत्रों का अवलोकन करना चाहिए। कवि या साहित्यकार जिन उद्‌गारों को कविताओं और निबंधों में व्यक्त नहीं करते या कर पाते, उन्हें वे अपनी चिट्ठियों में अवश्य प्रकट करते हैं।'[1]

आचार्य पद्‌मसिंह शर्मा जहाँ काव्य और साहित्य के असाधारण विद्वान् थे, वहीं 'चिट्ठियाँ लिखने में तो वे अद्वितीय थे। इस दिशा में उन तक कोई नहीं पहुँच सका।'[2]

आचार्य जी के पत्रों में जहाँ अपने से छोटों के प्रति आशीर्वादात्मक प्रेरणा, अपने समकक्षों के प्रति सौहार्द और प्रशंसा तथा अपने से बड़ों के प्रति स्वाभाविक

श्रद्धाभाव की अभिव्यक्ति हुई है, वहीं पत्रों के माध्यम से समाज, राजनीति, युगधर्म, प्रकाशकों, संपादकों, मुद्रकों आदि के लिए व्यंग्य एवं संगी-साथियों के प्रति सहज विनोद भी प्रकट हुआ है। अपने संगी-साथियों पर भी वे व्यंग्य का प्रयोग करते हुए दिखाई देते हैं, परन्तु ऐसे स्थलों पर उनका उद्देश्य उनकी अप्रशंसा करना नहीं होता, वरन् उन विनोदपूर्ण मीठी झिड़कियों में प्ररेणा, स्नेह और सहानुभूति छिपी हुई मिलती है।

हास्य और विनोद

विनोद ऐसा हास है, जिसमें आलोचना, उपहास तथा जुगुप्सा के लिए कोई अवसर नहीं होता। विनोद में प्रहसनीय की दुर्बलताओं के प्रति सहानुभूति की हलकी-सी रेखा भी छिपी रहती है। ऐसे हास में ममता होती है तथा जिस पर हम हँसते हैं वह हमारा प्रिय पात्र भी होता है। आचार्य जी के अनेक पत्रों में इस प्रकार का स्नेहिल-हास प्रकट हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि जहाँ कहीं भी उनका मूड सरल हुआ है, विनोद का उत्स सहज रूप से फूट पड़ा है। अपने पत्रों के उत्तर न मिलने पर आचार्य जी की लेखनी अनेक स्थलों पर विनोद करती हुई दिखाई देती है।

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी जी को मध्य भारत हिंदी साहित्य समिति, इंदौर से लिखे गए इस पत्र में प्रकट विनोद की बानगी लीजिए—

'स्वस्ति श्री सर्वोपमान योग्य सकल गुण निधान, प्रवासी भारतीयों की जान, परम सुजान, सद्‌गुण रत्नों की खान, घासलेटी-आंदोलन के महायान, गंगा-जल-निर्मल, यमुना-जल-शीतल, पावन पवित्र, अति विचित्र, ज्ञात शिरोमणि इत्यादि विविध विरूदावली विराजमान श्री (एक सौ अनगिनत) मान् चतुर्वेदी जी उर्फ 'ऋखीजी' महाराज जय जमना मैया की।

अपरञ्च समाचार यह है कि यहाँ श्रीराम जी की कृपा से कुशल-क्षेम है, आपका मंगल सदा जमना मैया से चाहते हैं। अग्रे वार्त्ता यह है कि बहुत दिनांसुं आपको पत्र नहीं आये, जे का बात है, जे आप चिट्ठिन को उत्तर नायँ देत? क्या मटियाबुर्ज वालों ने हमला बोल दिया है या किसी नये आंदोलन का झंडा उठा लिया है जो पत्रों का उत्तर देते भी नहीं बनता।'[3]

उपर्युक्त पत्र में श्री चतुर्वेदी जी के लिए प्रयुक्त विविध प्रकार के संबोधन और मध्य में बिगड़ी हुई ब्रज भाषा से हास्य की उत्पत्ति की गई है।

गुरुकुल काँगड़ी से अगहन बदी 5, 1985 रविवार को श्री वियोगी हरि को लिखे गए पत्र में भी इसी प्रकार का विनोद प्रकट हुआ है। पर्याप्त समय की प्रतीक्षा के पश्चात् श्री वियोगी हरि से पत्रोत्तर प्राप्त होने पर आचार्य जी ने अपनी विनोदी वृत्ति के अनुकूल उन्हें लिखा–

'प्रिय वियोगी हरिजी महाराज, नमो नमस्तेस्तु सहस्त्र कृत्वः। आखिर आपकी निद्रा टूटी, अज्ञातवास से प्रकाश में आना ही पड़ा। मैं हैरान था कि कंदरा में जा छिपे। क्या बात हुई जो इस तरह एकदम मौनी बाबा बन गए।'[4]

आर्यमित्र कार्यालय आगरा से दिनांक 29 अगस्त 1950 में आचार्य जी ने वैद्य कल्याण सिंह को पत्र लिखा था। इस पत्र के माध्यम से दर्ज कराई गई शिकायत में भी आचार्य जी के इसी विनोदी मूड के दर्शन होते हैं–

'अजी वैद्य जी नमस्ते।'

मर्दे खुदा ऐसी क्या खुदगर्जी। माना कि 'फसल के दिन हैं' फिर भी दीन-ओ-दुनिया से इतनी बेख़बरी। गर्जमंदों की अर्ज़ सुनने तक की फुर्सत नहीं। जवाब तक नदारद, लाहौल बिला कूबत, उस दिन एक दख़्वास्त भेजी थी, पहुँची ज़रूरी होगी, मैंने खुद पोस्ट की थी। पत्र बहुत साफ़ लिखा था, न पहुँचती तो लौटकर आती। भेजने वाले का पता भी दर्ज़ था। इसलिए न पहुँचने का हीला नहीं बन सकता। आख़िर आपने उत्तर क्यों नहीं दिया। ख़त तो 'जवाब-तलब' ज़रूरी था। ओझा जी से सम्मति लिखा कर भेज देते कोई बड़ी बात न थी, इंतज़ार करते-करते आँखें पथरा गईं, जिस तरह रोगियों की हाय-हाय सुनते तुम्हारा दिल पथरा गया है।'[5]

एक बार पर्याप्त तंदरुस्त और हट्टे-कट्टे मास्टर रामस्वरूप गर्ग को बुखार हो गया। उनकी इस विरोधाभासपूर्ण परिस्थिति पर आचार्य जी परिहास किए बिना न रह सके। दिनांक 21 सितंबर 1925 को आर्यमित्र कार्यालय, आगरा से मास्टर जी के नाम लिखे पत्र में आचार्य जी के पत्र की ये पंक्तियाँ उनके विनोदी स्वभाव की द्योतक हैं–

'आप-सा मोहतात मेहनती, वर्जिशी और तकरीर-पसंद हट्टा-कट्टा हेडमास्टर इस तरह बुखार की जद में कैसे आया। पढ़ने से जी चुराने वाले शरीर लड़कों की बद्दुआ का असर तो नहीं।'[6]

आचार्य जी ने अपने पत्रों में कितने ही स्थलों पर अपने संगी-साथियों को मीठी झिड़कियाँ भी दी हैं, परंतु उनमें कड़वाहट नहीं आने पाई है। दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

1. 'मालूम होता है महात्मा की मदहसराई करके अब तुम मामूली आदमियों से बात करना शान के ख़िलाफ समझने लगे हो।'[7]

2. 'मालूम होता है अब आप पूरे संपादक बन गए हैं, तभी तो हमारी पसंद की हुई कविता को नापसंद करके छापने से इनकार कर दिया। यह संपादकीय मद प्रायः आ ही जाता है।'[8]

आचार्य जी अपने ऊपर हँसने की कला में भी निपुण थे। वास्तव में वही हास्य श्रेष्ठ होता है, जो अपने ऊपर हँसाता है। एक बार आचार्य जी को जुकाम हो गया। रात भर नींद नहीं आई। इसकी सूचना देते हए उन्होंने दिनांक 8 दिसंबर 1922 को अपने सतीर्थ पंडित भीमसेन शर्मा को महाविद्यालय, ज्वालापुर से लिखा–

'मुझे कल रात से जुकाम और बुखार भी है। रात भर नींद नहीं आई–

नाक से बहता है मेरी दोस्ते-मन दरियाये-गंग।
सिर मेरा क्या आज यह कैलाश पर्वत हो गया।'[9]

व्यंग्य

इस सजल हास और विनोद के साथ-ही-साथ आचार्य जी के पत्रों में अनेक स्थलों पर व्यंग्य के तीखे छींटे भी हैं। प्रकाशकों, संपादकों, मुद्रकों, बुद्धिहीन लेखकों, हिन्दी-सेवियों और नेताओं की वृत्ति पर उनके पत्रों में व्यंग्य का तेज़ नश्तर चलता हुआ प्रतीत होता है।

प्रकाशकों की अर्थलोलुपता और भ्रष्ट रुचि पर व्यंग्य करते हुए आचार्य जी ने चैत बदी 13, 1985 रविवार को गुरुकुल काँगड़ी से श्री वियोगी हरि जी को लिखा था–

'हिन्दी संसार में ऐसा प्रकाशक मिलना दुर्लभ है, जो अच्छी चीज़ की कद्र करे और पेशगी पुरस्कार भी दे दे। प्रकाशक प्रायः अर्थपिशाच हैं। उनकें यहाँ सब धानों का भाव 12 पंसेरी है। लोकरुचि को भ्रष्ट करने वाले माल के खरीदार हैं।'[10]

प्रकाशकों के समान पत्र-पत्रिकाओं के संपादकगण भी लेखकों का शोषण करते रहें हैं। एक बार 'सरस्वती' में आचार्य जी का एक लेख छपा परंतु उसका कोई

पारिश्रमिक उन्हें नहीं मिला। संपादक ने इस पर भी दूसरे लेख की माँग साथ-साथ कर दी थी। इस स्थिति पर व्यंग्य करते हुए आचार्य जी ने श्री बनारसीदास चतुर्वेदी को दिनांक 1 मई 1929 को गुरुकुल काँगड़ी से लिखा था–

'सरस्वती' और 'माधुरी' पूँजीपतियों की पत्रिकाएँ हैं। पर उनके संपादक अपनी कारगुज़ारी दिखाने के लिए लेखकों को कोरा टरका देते हैं। फिर भी लेख लेना अपना हक समझते हैं।'[11]

मुद्रकों का झूठ बोलना और काम को निरंतर देर से करना प्रसिद्ध है। आचार्य जी भी प्रेस वालों की इस प्रवृत्ति के शिकार हुए थे। अपनी पुस्तक 'प्रबंध मञ्जरी' की छपाई कराते समय इसी संदर्भ में दिनांक 8 अक्टूबर 1929 को उन्होंने पंडित हरिदत्त शास्त्री को कलकत्ता से पत्र लिखा था, जिसमें मुद्रकों की प्रवृत्ति पर हास्यपूर्ण व्यंग्य किया गया है–

'मैं तो कहता हूँ पुस्तक छपाने से अधिक मुसीबत और नहीं है। वही लोग अच्छे रहे, जो इस छापे के युग से पहले ही मर गए। कहीं व्यास जी को अपने पुराण और महाभारत छपाने पड़ते तो चीं बोल जाते, एकदम मर्त्यलोक छोड़कर भाग जाते। और कहीं दुर्वासा जी का प्रेस से काम पड़ जाता तो कष्ट कंटक कट जाता। शाप देकर प्रेस वालों के सात कुलों को भस्म कर देते। कहीं दुर्वासा जी मिल जाएँ तो ख़्याल रखना किसी तरह इन प्रेस वालों से उन्हें भिड़ा दिया जाए, तो संसार का उद्धार हो जाए। पहले लोग हाथ से लिखते थे तो पुस्तक की क़द्र जानते थे, पढ़ते थे, याद करते थे और आदर से रखते थे। आज के लोग हैं पैसा फेंका, पुस्तक ख़रीदी, फाड़-तोड़कर अलग की, इसीलिए कुछ आता-जाता भी नहीं। ज्यों-ज्यों प्रेस का काम पड़ता है मेरी तो यही धारणा दृढ़ होती जाती है कि वह अच्छा था जब लोग श्रोत (कानों) से काम लेने वाले और स्मार्त्त (स्मृति में याद रखने वाले) होते थे। लिखना-पढ़ना सब फिजूल है और यह प्रेस-सिस्टम तो एकदम जहन्नुमी चीज़ है।'[12]

आचार्य जी हिंदी में तुलनात्मक समीक्षा के प्रवर्त्तक माने जाते हैं। परंतु नासमझी के साथ तथ्य की हत्या करते हुए तुलनात्मक समीक्षा करने को वे उचित नहीं मानते थे। इसी संदर्भ में उन्होंने माघ कृ. 10, 1984 को काव्य-कुटीर, नायक-नगला, चाँदपुर (बिजनौर) से श्री वियोगी हरि जी को पत्र लिखते हुए अपने

जो विचार प्रकट किए, वे ऐसे अज्ञानी लेखकों की वास्तविक स्थिति के अच्छे दिग्दर्शक हैं—

'महारथी' के नवीन अंक में, जिसमें आपका कड़खा छपा है, एक महारथी ने बिहारी और दास के एक दोहे की तुलनात्मक समालोचना लिखी है। कितना अत्याचार और अज्ञान है। दास का दोहा बिहारी की बिल्कुल नकल है। फिर भी 'भाव साम्य बिल्कुल नहीं' और दास का दोहा अच्छा है। 'हिंदी में तुलनात्मक समालोचना' का रोग संक्रामक होकर फैल रहा है। दूसरे महारथी 'समालोचक' के नवीन अंक में फर्माते हैं ' 'मतिराम सतसई' के प्रकाशन से बिहारी का आसन छिन गया।' जहाँ ऐसे विवेचक हों, बस साहित्य का बेड़ा पार है।[13]

हिंदी लेखकों की पद् लोलुपता और पदवी लोलुपता का दिग्दर्शन आचार्य जी की निम्नलिखित पंक्तियों से होता है। ये पंक्तियाँ चैत्र 30, 1976 को नायक नगला से श्री जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी को लिखे गए पत्र में से उद्धृत हैं, जिसमें साहित्य सेवी पंडित गौरीशंकर ओझा को सम्मेलन के सभापति पद से हटाकर किसी अन्य को सभापति पद सौंप दिया गया था—

'हिंदी वालों का बाबा आदम ही निराला है। साहित्य-सेवियों की कद्र कैसे हो ? इन्हें तो रायबहादुर, कोई बड़े भारी लीडर और लक्ष्मीवाहन चाहिए। साहित्य सेवी लोग तो यहाँ बेगारी और मजूर हैं।'[14]

श्री हरिशंकर शर्मा को नायक नगला, चाँदपुर से दिनांक 8 सितंबर 1926 को लिखे गए पत्र में आचार्य जी ने साहित्यिक संस्थाओं में व्याप्त 'लीडरी' पर व्यंग्य करते हुए लिखा था—

'ढोंगी लीडरों का ज़माना है, मौज है उनकी। चतुर्वेदी जी और कवि जी की कद्र करने वाले कहाँ हैं। जिधर देखिए यार लोगों ने अखाड़े बना रखे हैं, उनमें खुशामदी, स्वार्थी और मक्कार पंडे दंड पेलते हैं। भले आदमियों को कौन पूछता है ?'[15]

अस्तु, आचार्य जी के पत्रों में जहाँ मार्मिकता और अपने संगी-साथियों को स्मरण रखने की महती भावना है, वहीं उनमें विनोद का भाव और आवश्यकता पड़ने पर व्यंग्य भी प्रकट हुआ है। उनके व्यंग्यों में चरचरापन और तीक्ष्णता के साथ प्रखरता भी है; परंतु विनोद और परिहासपूर्ण स्थलों पर वे मात्र आनंद की भावना से भरे हुए प्रतीत होते हैं।

संकेत

1. पद्मसिंह शर्मा के पत्र, प्राक्कथन, डॉ० हरिशंकर शर्मा, पृ० 7
2. वही, परिशिष्ट, श्रीराम शर्मा, पृ० 247
3. पद्मसिंह शर्मा के पत्र, पृ० 111, पत्र संख्या 116
4. वही, पृ० 25, पत्र संख्या 24
5. पद्मसिंह शर्मा के पत्र, पृ० 169-170, पत्र संख्या 177
6. वही, पृ० 208, पत्र संख्या 226
7. वही, पृ० 44, पंडित हरिशंकर शर्मा को लिखा गया पत्र, सं० 44
8. वही, पृ० 67, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखा गया पत्र, सं० 68
9. पद्मसिंह शर्मा के पत्र, पृ० 206, पत्र संख्या 224
10. वही, पृ० 26, पत्र संख्या 25
11. वही, पृ० 79, पत्र संख्या 81
12. पद्मसिंह शर्मा के पत्र, पृ० 126-127, पत्र संख्या 131
13. वही।
14. वही. पृ० 179, पत्र संख्या 190
15. पद्मसिंह शर्मा के पत्र, पृ० 31, पत्र संख्या 30

❑ ❑

आम का पेड़

अभिमन्यु अनत

मैं अपने सामने की स्लूप जैसी दिखने वाली पत्थरों की मुंडेर को देखता रहा। गन्ने के खेतों के अपने साथियों के साथ हमने इस मारीच देख की पथरीली जमीन के सीने को चीर कर एक-एक पत्थर को बाहर निकाला था ताकि बंजर पड़ा माटी उपजाऊ हो सके। धरती के भीतर से निकले उन पत्थरों से बोआई और कटाई में अड़चन न पैदा हो इसलिये हम मजदूरों ने उन्हें बड़े करीने से सजाते हुए बौद्धों के स्तूपों का सा रूप दिया था। दूर तक इस तरह के कई स्तूप द्वीप के दूसरे इलाकों में भी फैलते गये थे।

मेरी निगाह उस मुंडेर पर टिकी हुई थी जो नदी के पास थी और जिस पर के आखिरी पत्थर को ऊपर पहुँचाकर उसे ढंग से सजाते समय बीच के एक पत्थर के लुढ़क जाने से मैं उस ऊँचाई से फिसल कर नीचे गिरा था। पर मैं उस स्तूप को देखते हुए अपने गिरने और लंगड़े हो जाने की बात न सोचकर अपने बेटे के बारे में सोच रहा था। मेरा ग्यारह साल का मोहन जो आज साल भर होने को है घर नहीं लौटा। मुंडेर की दाँयी ओर नदी थी और बाँयी ओर वह आम का पेड़ था मेरे बेटे की ही उम्र का। कभी मैंने उस पेड़ पर गर्व किया था आज उसे कोसता रहा हूँ।

अपने ही पैरों पर खुद कुल्हाड़ी मार ली थी मैंने।

मेरे सामने कंटीले तारों के अहाते में खड़ा आम का वह पेड़ दूसरी बार के लिये आमों से लदा हुआ था। इस द्वीप का सम्भवतः यह पहला आम का पेड़ था। करीम चाचा जो यहाँ की कई कोठियों में काम कर चुका था, कहता कि सम्भवतः यही वास्तव में द्वीप भर में एक मात्र आम का पेड़ था। बारह साल पहले जब मॉरिशस के गन्ने तथा शक्कर कोठियों को अपने खेतों और कारखानों में कामगर मिलना दुलर्भ हो गया था। जब विश्व भर में दास प्रथा की समाप्ति के बाद अफ्रीकी दासों ने अपनी यातनाओं से ऊबकर बगावत कर दी थी और कोठियों से भाग कर जंगलों में जा बसे थे तब मारीच देसवा के दलाल बिहार के हमारे गाँवों में पहुँचे थे।

हमारे इलाके में भारी सूखा पड़ा था। नौकरियाँ नहीं थी। हांडियों में अनाज नहीं थे। बच्चे भूख से तड़प रहे थे। मारीच देसवा से पहुँचा सरदार गाँव-गाँव यह कहता फिरता रहा।

— क्यों मर रहे हो यहाँ। मेरे साथ चलो। जहाँ पत्थर उलटने पर सोना ही सोना मिलता है।

भूख के मारे लोग पूछ बैठे।

— कहाँ ? कहाँ ?

— समन्दर पार मारीच देस में। बेसुमार धन कमा कर अपने इस देश को लौटो।

— चलअ जा। मालामाल होके लौटउ जा। हियाँ भरम गंवावला से का मिली।

— मारीच देसवा जन्नत ह जन्नत।

किसी ने पूछ लिया था।

— मारीच और जन्नत ?

— भैया मॉरिशस शक्कर का देसवा।

उन चीकनी-चुपड़ी बातों में लोग तो फंसे ही लोगों की तरह मैं भी छलावे में आ गया। बाप तो महामारी में चल बसा ही था। माँ समझाती रही। बोलती रही बलदेवा धोखे में मत आओ पर माँ को रोते छोड़ मैं पटना से कलकत्ता पहुँच कर ही रहा। कलकत्ते में अपने मौसा के घर दो दिन ठहर कर तीसरे दिन प्रवासी डिपो में जाकर मॉरिशस जाने वाले बेसुमार शर्तबंद मजदूरों में शामिल होकर जहाज में जगह लेने के लिये भर्ती हो गया।

मेरा मौसा मुझे बन्दरगाह छोड़ने आया। पहले मौसी का तैयार किये सतुवे की पोटली थमाई। फिर आमों भरी छोटी सी टोकरी थमा कर मौसा ने कहा था–

सुन रखा है कि यह काला पानी की सी दुर्गम यात्रा है। अपना ख्याल रखना। सतुवे के साथ ये कुछ अधपके आम हैं।

और जब मैं मौसा के पाँव छूकर मॉरिशस के दलाल के पीछे चलने को हुआ तो मौसा ने आखिरी हिदायत दी थी–

बेटे ये आम चार-पांच दिन में पक जायेंगे। इन आमों की गुठलियों को समन्दर में मत फेंक देना। अपने नये देश में इन्हें बो देना।

जिस जहाज से हम गिरमिटिया मजदूरों को तीस दिन की लम्बी यात्रा करके नये देश को पहुँचना था उसका नाम दोना–कामेलिया था। जहाज में मेरी पहली जान पहचान मेरी जिस हम उम्र के साथ हुई वह बिहार के आजमगढ़ का सुलेमान था। बगावत के आरोप में उसे कैद की सजा हुई थी पर चारदीवारी के भीतर जाने से पहले वह बिहार से भागता हुआ कलकत्ता पहुँच आया था। मेरा दूसरा साथी मद्रास के कुदालोर प्रांत का सुब्रमन्यम था जिसे हिन्दी बहुत कम आती थी फिर भी वह मुझसे हिन्दी में ही बातें करता।

इसी तरह आंध्र के विंजागपतम इलाके का आपाडू भी अपनी टूटी-फूटी हिन्दी बोलकर अपनी राम कहानी सुना गया था। वह बम्बई का पांडू था जो हिन्दी के साथ-साथ भोजपुरी में बात कर लेता था। रत्नागिरी में उसका जो पड़ोसी था वह बिहार का था और वह भोजपुरी लोक-गाने भी गाया करता था जो कुछ-कुछ पांडू को भी आने लगा था।

जहाज में दो सौ बीस यात्री थे। भारत के चार प्रांतों से। जीवन में पहली बार मुझे प्रतीत हुआ था कि उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, मद्रास तथा आंध्र इस जहाज पर चार दूर-दराज के प्रदेश न होकर अब एक सम्पूर्ण संसार में बदल गये थे। मेरे ख्याल की पुष्टि करते हुए कुदालोर के सुब्रमन्यम ने कहा था।

— मेरा कुदालोर भारत के सभी प्रांतों से कितनी दूर लगता है पर इस जहाज में ये सभी प्रांत कितने पास आ गये हैं। कितना अच्छा लग रहा है।

उसकी हिन्दी में तमिल शब्दों के भी शामिल हो जाने के बावजूद मुझे उसकी बातें समझने में कभी किसी तरह की कठिनाई नहीं हुई। जहाज में सुब्रमन्यम ने

अपनी राम कहानी हम सभी को सबसे पहले सुनाई थी। वह गाँव के कोविल के बच्चों को तमिल पढ़ाता था। एक शाम कोविल के पुजारी ने उसे बच्चों से यह कहते सुन लिया था कि जात-पात का चक्कर भगवान का चलाया हुआ न होकर आदमी का चलाया हुआ था। इस गुनाह की सज़ा यह रही कि ब्राह्मण-पुत्र होते हुए भी पुजारी ने उसे उस दिन से कोविल के प्रांगण में प्रवेश होने ही नहीं दिया।

कलकत्ता से "दोना-कामेलिया" के लंगर उठाते ही कप्तान ने डैक पर इकटठे सभी यात्रियों से कहा था कि इस तीस दिन की लम्बी यात्रा के दौरान किसी भी यात्री को यह नहीं भूलना चाहिये कि इस जहाज में एक ही आदमी का हुक्म चलेगा।

— और वह आदमी मैं हूँ।

उसकी अंग्रेजी-हिन्दी मिश्रित इस बात को बहुत कम लोग समझ पाये थे और फिर लोगों ने हर बात समझने की कभी कोई कोशिश की ही नहीं। उन सभी का लक्ष्य तो केवल यह था कि कब हम मंजिल को पहुँचें। कब मालामाल होकर अपने जनों के बीच लौटें। पांडू ने तो कहा भी था कि—अरे भाई हमें आम खाने से मतलब है गुठली गिनने से नहीं।

और उसकी इसी बात ने मुझे याद दिला दी कि मेरी झोली में मौसा के दिये हुए पांच आम थे जो मेरी बिस्तर की बगल वाले कोने में रखे हुए थे। दो दिन पहले मैंने उन्हें बाहर निकाल कर जानना चाहा था कि उनमें से कोई एक भी पका हुआ हो तो मित्रों के बीच बांटकर खा सकते थे पर पाया था कि अभी और दो दिन लगेंगे उनके अच्छी तरह पकने में।

जहाज का खाना इतना घटिया और अनपच था कि हम लोग खाने की रूचि खोकर भी उसे खाने को विवश थे। कई लोग तो उसे खाकर बीमार भी पड़ गये थे। मित्रों तथा अन्य सहयात्रियों की मांग पर मैंने दोना-कामेलिया के कप्तान से माँग की कि जहाज में रहने-सोने की व्यवस्था कुछ भी थी हमें कबूल है पर खाना तो हमें ढंग का मिले। उसने वायदा भी किया कि आईन्दा हमें अच्छा खाना मिलेगा पर वह दिन कभी आया ही नहीं।

रस की आखिरी बूंद तक चूस कर उसे फेकने लगा तो मैंने उसके हाथ को थाम लिया। उसके हाथ से गुठली लेकर मैंने उससे कहा था—

फेंको मत।

वह बोला था–

कमाल है। आम खा के गुठली फेंक देवल जाला। तू एके फेंके से काहे रोकत बानी ?

मुझसे पहले पांडू ने जवाब दिया था–

यह सही है कि प्रायः लोग आम खाकर गुठली को फेक देते हैं क्योंकि उनका आम खाने से मतलब होता है पर कुछ ऐसे लोग भी होते है जो गुठली को संजोकर रख लेते हैं। उसमें अंकुर आने पर उसे बो देते हैं।

सुलेमान हंस कर बोला था–

समन्दर में आम के गांछ उगाय के इरादा बा का भैया ?

मैंने सुलेमान के इस व्यंग्य का कोई उत्तर दिये बिना बारी-बारी से पाँचों गुठलियों को बटोर कर झोली में रख लिया था। उस दिन अपनी माँ की बगल में बैठी चाँदो पहली बार मुस्कराई थी और पहली बार उससे बात कर जाने की हिम्मत मुझमें पैदा हो आयी थी। उससे सीधे बात न करके मैंने उसकी माँ का सहारा लेकर उससे पूछा था–

तुम्हारी माँ यह रात-दिन क्या पढ़ा करती है ?

उसने मेरे इस प्रश्न का उत्तर तत्काल नहीं दिया था। अपने हाथ की पुस्तक को पीले कपड़े में लपेट कर जब उसकी माँ जहाज की अन्य स्त्रियों के बीच जहाज के नीचे वाले भाग में चली गयी तो मैंने चांदो की ओर देखा था। तब मेरी आँखों में एक मौन प्रश्न था पर चांदो मेरे पहले प्रश्न का उत्तर देते हुए बोली थी–

मेरी माँ रामायण पढ़ती रहती है। मेरे बाप का छोड़ा हुआ यही एक धन है हमारे पास।

और फिर दूसरे दिन बाद ही चांदो मुझे यह बता पायी थी कि उसके बाप को रामायण कंठस्थ थी और वह रोज उसके दो पन्ने लिखता रहता था। फिर तो उसकी माँ ने कपड़े से अलग करके वह हस्तलिखित पुस्तक मुझे दिखाई थी जिसमें जहाँ-तहाँ उसकी बनाई हुई सीता और राम तथा हनुमान आदि के रेखाचित्र भी थे।

जहाज में खाने-पीने से लेकर नहाने-धोने तथा सोने की व्यवस्थाएँ एकदम खराब थी। सुबह की मौलिक आवश्यकता के लिये दुर्गन्ध भरे दो पाखानों के सामने लम्बे समय तक कतार में खड़ा रहना पड़ता था। पांडू बार-बार एक ही बात कहता रहता।

> यह तो सचमूच का काला-पानी वाली यातना भुगतनी पड़ रही है। जहाँ दिन समाप्त ही नहीं हो पाता और रात दोगुनी लम्बी हो जाती है।

और जहाज का कप्तान भी बार-बार यही कहता रहा था कि वह तीस दिन में हमें जमीन पर उतार कर रहेगा। शायद ऐसा ही होता अगर यात्रा के दौरान दो बार मौसम उतना अधिक खराब न हो जाता और तूफान तक की नौबत न आ जाती। जहाज के तीनों बादबान उतारने में नाविकों को यात्रियों की मदद लेनी पड़ी थी। खराब खाने का सबसे बड़ा हादसा तब पेश आया जब बम्बई की एक स्त्री की दस्त और उलटी के कारण मृत्यु होकर रही। बीमारी को अधिक बढ़ने से रोकने के लिये उसके शव को पानी में फेक देना पड़ा। ऐसा करके भी बीमारी को तुरन्त रोका नहीं जा सका। वह रोग और छह-लोगों की जान लेकर रहा। करीम ने दर्द भरे व्यंग्य में मुझसे कहा था–

> एके कहत बानी कुदरत क खेल। आदमी को मरने पर जमीन में दफनाया जाता है। हियाँ से पानी में दफनावल जाता। अहोभाग हम लोग का।

जहाज की दुर्गम यात्रा और बीमारी की बिकराल स्थिति के बावजूद हमारा जहाज मारीच द्वीप को पहुँच कर रहा। चाहे तीस दिन की यात्रा चालीस दिन में पूरी हो पायी। मैं अपने साथियों के साथ जब दोना-कामेलिया को छोड़ पाल वाली छोटी नाव में सवार होकर पोर्टलूई के बंदरगाह से प्रवासी घाट को बढ़ रहा था तो गरमी जोरों की थी। हम ने जब भारत छोड़ा था तो वहाँ जोरों की ठंड थी जबकि मारीच देसवा में इतनी भारी गरमी थी। मौसम के इस रहस्य की बात तो बाद में समझ में आयी कि जब भारत में गरमी होती है तो यहाँ ठंड और जब यहाँ ठंड तो वहाँ गरमी। मैं जब जहाज से उतर कर छोटी नाव में सवार हो रहा था तो मेरी झोली से आम की गुठलियों में से दो गुठलियाँ पानी में गिर गयी थी। तीन के बचे रहने का मन में संतोष था। हम सभी ने धरती पर सही सलामत उतरने पर ऊपर वाले को शुक्रिया कहा। किसी तरह काला पानी पार करके हम मारीच देसवा की धरती पर पाँव रख सके। पर वहाँ भी प्रवासी घाट के डिपो में और तीन दिन के नर्क को झेलना ही पड़ा। छावनी में चांदो की माँ भी बीमार पड़ गयी पर सही वक्त पर डॉक्टर द्वारा दवा दारू और सही इलाज के कारण वह तीसरे ही दिन चंगी होकर वहाँ के अस्पताल से निकली।

मैंने मन ही मन अपने मौसा से प्रतिज्ञा की कि अब इन बाकी तीन गुठलियों को मैं अपनी जान से अधिक महत्त्व देकर अपने साथ रखूंगा। उस समय मुझे क्या मालूम था कि मैं अपने मौसा से गलत वायदा कर रहा था। तीसरे ही दिन मेरी यह प्रतिज्ञा खोखली प्रमाणित होकर रही जब भेड़-बकरियों की तरह हमें झुंडों में खड़ा करके शक्कर कोठी के मालिकों के हवाले करने की हमारी बारी आयी। गिरमिटिया प्रवासियों के रक्षकों की पूरी देखरेख के बावजूद हमारे साथ मजदूरों से कहीं अधिक जानवरों का जैसा बर्ताव किया गया। हमारे गलों में नम्बर के टिकट तो लटकाये जा ही चुके थे औपचारिकताएँ भी बहुत भारी पड़ रही थी। मालिकों और हम मजदूरों के बीच के दलाल भी मालिकों की मनमानी को बढ़ावा देने लगे थे। हमारे बीच से एक माँ-बेटी को उनकी टोली से निकाल कर उन्हें मजबूरन उस गोरे मालिक को सुपुर्द किया जा रहा था जिसे दोनों स्त्रियाँ फब गयी थीं।

मैंने देखा कि गोरे मालिक के जोरदार अधिकार के सामने जब भारतीय प्रवासी रक्षक का हस्तक्षेप भी बेकार चला जा रहा था तो मैं उस छीना-झपटी के बीच जा खड़ा हुआ और मेरी बगल में सुब्रमन्यम, पांडू और आपाडू भी आ डटे। जिस भाषा में तकरार हो रही थी वह तो मेरी समझ से बाहर की बात थी पर मुद्दे को मैं बहुत अच्छी तरह समझ रहा था। प्रवासी रक्षक की बातों से तो मुझे पहले यह पता चला गया था वह अंग्रेजी और फ्रेंच के साथ-साथ हिन्दी भी अच्छी तरह बोल लेता था। इसलिये मैंने उससे कहा—

> आपने पहले ही दिन हमसे कहा था कि हमारे साथ जबरदस्ती नहीं की जायेगी। जब आप पति-पत्नी को दो अलग कोठियों में जाने से रोक सके तो फिर इन माँ-बेटी को आप अलग क्यों होने दे रहे हैं?
>
> इसलिये कि वह अधिक रुपये दे रहा है?

गोरे मालिक की बगल में उसके जो दो सरदार थे वे मालिक से भी अधिक अधिकार जताते लग रहे थे। उनमें एक तो मलगासी क्रिओल था और दूसरा हमारी ही तरह दिखने वाला भारतीय लग रहा था। यह दूसरे व्यक्ति ने अपने हाथ की लाठी को दोनों हाथों से पकड़े मुझे और मेरे साथियों को पीछे ढकेलने लगा। मैं और मेरे साथियों ने उसकी लाठी को अपनी मुट्ठियों में जकड़कर उसे पीछे किया और इसी ठेला-ठेली में मेरी झोली से तीनों गुठलियाँ नीचे गिर पड़ी।

मामले को संगीन होते पाकर प्रवासी रक्षक झपट कर प्रवासी डिपो के दफ्तर के भीतर पहुँचा और मजिस्ट्रेट तथा दो पुलिस के साथ सामने आ गया। गोरे मालिक को अपने लठैतों के साथ पीछे हटना पड़ा पर मेरी झोली से गिरी गुठलियाँ मुझे नहीं मिल पा रही थी। मेरे और मेरे साथियों का उन गुठलियों का ढूँढ़ना हमारे सहयात्रियों को बड़ी उटपटांग बात लग रही थी पर हम खोजते ही रहे। हताश हो चले थे जब चांदो दो गुठलियों को अपनी हथेली में लिये मेरे सामने आ गयी थी।

जिस कोठी के मजदूरों में मुझे शामिल किया गया उसमें मेरे साथ चारों मित्रों में केवल सुब्रमन्यम ही आ सका बाकी तीनों को अलग-अलग शक्कर कोठी में जाना पड़ा। सुब्रमन्यम ने मुझे दुःखी पाकर धीरे से मेरे कान में कहा था—

चांदो अपनी माँ के साथ तो हमारे साथ है।

रेलगाड़ी से उसी शाम को हम सेंतहिबेर शक्कर कोठी में पहुँचे। हमें गन्ने के सूखे पत्तों की जिन झोपड़ियों में रखा गया उनमें प्रवेश पाने के लिये सिर को घुटनों तक झुकाना पड़ा था। पर मेरा हौसला बना रहा क्योंकि गन्ने के खेतों के उन तमाम जुल्मों, अपमानों और अन्यायों को झेलने के लिये मेरे साथ मेरी बगल में चांदो थी। कोई तीस-चालीस दिन बाद मैंने दोनों बची गुठलियों में से एक को अंकुरित होते पाया जिससे दूसरे के सूख जाने का दुःख जाता रहा।

प्रवास के दौरान जिस पहले खेत में मुझे जमीन से पत्थर-दर-पत्थरों को हटाकर गन्ने बोने का पहला अवसर मिला उसी खेत में मैं अब तक दो फुट ऊँचे हो आये आम के पौधे को बोकर विभोर हो उठा था। चांदो भी मेरी बगल में मेरी मदद करती हुई उस पौधे को निहारा करती थी। बोली थी—

एगो आंठी जमल एगो ना जमल।

मैं बोला था कि अरे इस एक ही गांछ से देखना एक दिन इस द्वीप में कितने आम के पेड़ फैल जायेगें। इस पर चांदो पूछ बैठी थी—

अपन बोअल गांछ के फल हमनी खा पावब स?

हम न सही हमारे बच्चे तो खा पायेंगे।

चांदो के हाथ अपने आप अपने पेट पर पहुँच गये थे।

★ ★ ★

सामने से कंधे पर बन्दूक थामे मंगरू सरदार को आते देख मेरे दस साल पहले का घाव और भी अधिक ताजा होकर मुझे तिलमिला गया। इसी मंगरू सरदार की

सामंती नसीहतों को अपने कानों में गूंजता हुआ सुनता रहा था। वास्तव में ये नसीहतें मंगरू सरदार की नहीं थी। यह तो कोठी मालिकों की हिदायतें थीं। मौन हिदायतें जिन्हें स्वर देते थे कोठी के सरदार।

"गिरमिटिया मजदूरों! तुम्हारा फर्ज मेहनत करते रहना है।

पसीना बहाते रहना है। स्वामीभक्ति निभाते रहना है।"

गन्ने के खेतों और कारखानों की ओर से हर गिरमिटिया मजदूर को यह आदेश था –

> 'तुम सांस मत लेना यह अधिकार तुम्हारा नहीं तुम्हारे आका का है। तुम सोचने की कोशिश मत करना। यह काम तुम्हारे आकाओं का है। तुम निर्णय मत लो। निर्णय उनके होंगे जिनकी मेहरबानी से तुम जी रहे हो। तुम्हारा काम, तुम्हारा फर्ज, तुम्हारा धर्म, बस यही है कि तुम अपने मालिक के लिये जियो, अपने मालिक के लिये मरो। उनकी सेवा में हर पल दोनों पाँवों पर खड़े रहो।'

मैं और मेरे तमाम साथियों ने यही तो किया था। मैं तो अपना एक पाँव लिये हुए भी उसी पहले जैसे अपने को दोनों पाँवों पर ही खड़ा पाता रहा था। पर अब तो मोहन को खोकर अपने को दोनों पाँवों से विकलांग पाने लगा था। कड़कती धूप में चाहे वह मालिक के जूतों की मार होती, कोड़े और बाँसों के प्रहार होते या सरदारों की गालियों की बौछारें हमें चुप्पी साधे पसीने बहाते रहना था। मूसलाधार बारिश होती तो भी कमर सीधी करना मना था। किसी पेड़ के नीचे पहुँच कर अपने को भीगने से रोकने की इजाजत नहीं थी। सबसे पहले यह मंगरू ही बरस पड़ता हम पर। धर्म बदल कर वह मजदूर से सरदार बना था और अब मंगरू की जगह वह मोरल था। हमारी शक्कर कोठी का यह मंगरू सरदार तो कभी मलगासी सरदार और मालिक से भी अधिक क्रूरता के साथ पेश आता था। उसी ने तो...।

वह घटना भुलाई नहीं जाती आखिर क्यों? पीड़ितों को स्मृति क्यों दी गयी थी? लाख दबाने की कोशिश करके भी मैं अतीत को दबा नहीं पाता। और क्यों मैं सामने के इस आम के पेड़ के सामने आ खड़ा होता हूँ। इधर से होकर जब भी किसी शाम को घर लौटता हूँ तो चांदो मेरी उदासीनता को देख पूछ बैठती है।

आज फिर आम वाले खेत के रास्ते से लौटे हो ? हमें भूल जाय के बोल के खुद काहे ऊ बात को याद करत रहते हो।

मेरी पीठ के पीछे आँसू बहाते रहने वाली चांदो अपने कमजोर बदन के साथ भीतर से कितनी ताकतवर थी। मेरे सामने कितने संयम के साथ अपनी पीड़ा को छिपाये रहते थी।

★ ★ ★

पूरा साल बीत गया पर वह दृश्य भुलाये नहीं भूलता। कोई दो महीने बाद मैं उस पगडंडी से घर लौट रहा था। दो महीने पहले आम के पेड़ पर दूसरे साल के लिये बौर आने लगे थे। आज तो वह एक बार फिर आमों से लदा हुआ था ... ठीक पिछले साल की तरह। पर पिछले साल देश का यह पहला आम का पेड़ कंटीले तारों से घिरा हुआ नहीं था। एक ओर नदी और दूसरी ओर शक्कर कोठी के मालिक का दूसरा आलीशान घर था जो ऊँची दीवारों के भीतर था और जिसकी रखवाली के लिये दो बंदूकधारी मलगासी रखवाले तो थे ही साथ में तीन खूंख्वार कुत्ते भी थे। जब मैं इस स्थान पर आम का पौधा लगाना चाहता था उस समय मालिक की इस दूसरी हवेली की जगह कंटीली झाड़ियाँ थी, उन्हीं दिनों हम ही मजदूरों के द्वारा उस जंगल की कटाई और सफाई हुई थी।

आम के पेड़ के पहले फल आने से कुछ ही महीने पहले मालिक की यह नयी हवेली बनी थी। उस घटाटोप कजराली दोपहर में आम के पेड़ वाले खेत से कुछ ही दूरी पर मोहन भी अपनी माँ की तरह गन्ने काटने में मेरी मदद कर रहा था। मुझे लगता वह मेरा दूसरा पाँव था। मोहन को अपनी बगल में पाकर मैं उसी पहले जैसे हौसले से ईखों को काटता रहता जब अपना बाँया पाँव सही-सलामत था। मेरे हिस्से गन्ने की जो कतार आयी थी वह बहुत ही घनी थी और मंगरू सरदार मुझे यह आदेश दे गया था कि अगर शाम छह बजे तक मैंने सारे गन्ने नहीं काटे तो सप्ताह की तंख्वाह से एक दिन की तंख्वाह काट ली जायेगी। उस उमस भरी दोपहर में मजदूरों के लिये पानी की जो बालटी रखी हुई थी वह खाली हो चुकी थी। मोहन हम सभी मजदूरों के लिये नदी से पानी लेने गया पर शाम को अंधेरा छा जाने के बाद भी नहीं पहुँचा। बस्ती के सभी लोग मिल कर उसकी तलाश में लग गये थे। रात में करीम चाचा ने बड़े सहमे हुए धीमे स्वर में बताया था।

बलदेवा हम तोके जौन बात बताई जात बनी ऊ कोइ दूसर नै जाने पाई। मैंने पाँच बजे के करीब मोहनवा को कंटीले तारों की घिरावट को पार करके आम के पेड़ की ओर जाते देखा था। हम आवाज देके ओके रोके चहली पर ऊ हमरा नै सुन पैलक।

उसी समय सुब्रमन्यम तथा दूसरे साथियों के साथ हम लोगों ने हाथों में मशाल लिये आम के पेड़ और नदी के इलाके को छान मारा। मालिक की हवेली की ओर भी बढ़ना चाहा पर कुत्तों को अपनी ओर लपकते पाकर हमें पीछे लौट जाना पड़ा। तीन दिन बाद आम के पेड़ वाले इलाके की बढ़ आयी झुरमुट की सफाई करते हुए एक मजदूर को मोहन की फतूही गुदड़ी में मिली।

दूसरे दिन जब प्रवासी-रक्षक अपने दौरे पर कोठी पहुँचा तो मैंने उसे सारी बातें बतायी। वह मुझे अपने साथ लिये शक्कर कारखाने के पास मालिक के दफ्तर में पहुँच कर उसने उससे जवाब तलब करना चाहा। बोला–

बताया जा रहा है कि आपके तीनों कुत्तों ने इस मजदूर के बेटे पर आक्रमण किया था।

इसमें मैं क्या कर सकता हूँ? मैंने तो उसे अपने अहाते में घुसकर आम चुराने को नहीं कहा था।

मैंने हाथ जोड़े कहा था।

मालिक वह आम का पेड़ मेरा रोपा हुआ...।

गोरे मालिक से पहले उसके पास खड़े मंगरू सरदार दहाड़ उठा–

अपने बाप की जमीन में बोया था क्या?

जाते जाते प्रवासी-रक्षक बोल गया था।

कुत्तों का काटा बच्चा अपने घावों के साथ घर तो लौटता...।

गोरा मालिक अपनी कुर्सी से उठकर खड़ा हो गया।

यह मेरा दफ्तर है खोई हुई चीजों का कबाड़ा नहीं।

मैं इस मामले को पुलिस के हाथ सौंपने जा रहा हूँ। मुझे शक है कि आपके कुत्तों ने बच्चे की जान ले ली हो।

मामला पुलिस में दर्ज तो हुआ पर साल होने को है कभी कोई जांच-पड़ताल हुई ही नहीं।

★ ★ ★

आज मैं आम के पेड़ के सामने खड़ा अपने मोहन की याद में आँखों में आँसू का वह आना नहीं रोक सका। कंधे पर बन्दूक लटकाये मंगरू सरदार मेरे पास से होते हुए उस जगह पर पहुँचा जहाँ गाँव के बच्चे तारों की जाली थामे अहाते के भीतर आमों से लदे पेड़ को टुकूर टुकूर देख रहे थे। आम के पेड़ की छाया में मालिक के तीन बच्चे आम खाते हुए मजदूर के बच्चों को ललचाते रहे।

सरदार के डांटने पर मजदूरों के बच्चे गाँव की ओर भाग उठे। सुब्रमन्यम की बात याद गयी।

तुम्हें आम की गुठलियों को समन्दर में फेंक देना चाहिये था।

इसी के साथ मुझे चांदो की आवाज की प्रतिध्वनि भी सुनाई पड़ी।

इस आम के पेड़ की कोई आंठी अहाते से बाहर जमेगी।

चांदो को आज भी विश्वास था कि उसका बेटा घर जरूर लौटेगा और अपने बाप के रोपे हुए आम के पेड़ से आम अवश्य खायेगा।

बच्चों को खदेड़ कर मंगरू सरदार मेरे पास से गुजरा। ठिठक कर पूछा।

आम खाने का मन ललक रहा है क्या?

मैंने भी उससे पूछा।

तो यह सही है कि तुम्ही ने मोहन पर खुंखार कुत्तों को लहकाया था?

मंगरू सरदार की बंदूक उसके कंधे से सरककर उसके हाथों में आ गयी। मैंने आम के पेड़ की ओर देखा। मुझे लगा कि उसकी एक डाली से मंगरू की लाश झूल रही थी।

❑ ❑

शापित सुख

उत्तम कांबले

तीसरी तासिका की बेल हो गई तो प्रा. कोरे कुछ सचेत हुए। वैसे बेल होते ही पूरे स्टाफरूम में ही हलचल होती थी। कोई हाथ से लगा खड़िया का सफेद रंग पोंछते हुए अंदर आता तो कोई तासिका लेने चला जाता। एक-दो मिनट के लिए दौड़ धूप का माहौल बन जाता। प्रा. कोरे अपनी जगह से उठ गए। उन्होंने आलमारी से खड़िया एवं डस्टर निकाल लिया। पिछले दस साल से उनकी यही आदत थी। इस अवधि में उन्होंने कक्षा में कभी खड़िया का इस्तेमाल नहीं किया था। इससे डस्टर का उपयोग करने का प्रश्न ही नहीं उठता। फिर भी उन्होंने कक्षा में खड़िया और डस्टर ले जाने की आदत डाली थी। शायद पिछले दस सालों से वे वही खड़िया और डस्टर उपयोग में लाते होंगे। इन दो वस्तुओं को रखने की जगह तक तय थी। आदत के अनुसार उन्होंने दोनों वस्तुएँ हाथ में उठाई। डस्टर पर खड़िया रखने के लिए जगह बनाई थी। उस जगह पर खड़िया बिल्कुल ठीक बैठ जाती। डस्टर और खड़िया चुटकी में पकड़कर वे चल पड़े। उनकी बी.ए. की अंतिम कक्षा पर तासिका थी।

प्रा. कोरे की आहट से कक्षा का शोरगुल थम गया। छात्रों ने अपने चेहरों पर शांति का नकाब ओढ़ लिया। प्रा. कोरे ने उसे भाँप लिया। वैसे वे भी इसके आदी बन गए थे। वे कुर्सी के पास पहुँच गए। एक पल छात्रों पर नजर घुमाई। कुर्सी

में बैठते हुए उन्होंने फलक की ओर देखा। वे कुर्सी में बैठने के बजाए झट से खड़े हो गए। उनकी निगाहें फलक पर स्थिर हुईं। तुरंत उन्होंने छात्रों की ओर गर्दन घुमाई। उन्हें लगा कि वे छात्रों से नजर मिलाने का साहस खो चुके हैं। और यह वास्तव में था। उन्होंने टेबल पर रखी खड़िया और डस्टर उठा लिया। उनका चेहरा पसीने से तरबतर हो चुका था। कुछ बोलने हेतु उन्होंने होंठ हिलाए लेकिन शब्द होंठों में ही अटक गए। आँखें लाल हो जाने से उनका काला चेहरा अधिक भयावह लग रहा था। चेहरे पर जमा पसीना पोंछने हेतु उन्होंने हाथ की खड़िया और डस्टर जोर से टेबल पर पटक दिया। इससे इतने दिन तक संभालकर रखी खड़िया टूट गई। उसके दो-चार टुकड़े हो गए। उन्होंने जेब में हाथ डालकर रूमाल निकाला और चेहरा पोंछ दिया। वे न छात्रों की ओर देख रहे थे न स्वयं की ओर। उन्होंने टेबल पर रखा डस्टर उठा लिया। उसकी पीठ पर खड़िया नहीं थी। उसका एक टुकड़ा टेबल पर तो बाकी टुकड़ें नीचे गिर गए थे। उन्होंने हमेशा की तरह डस्टर चुटकी में न पकड़कर मुट्ठी में भींच लिया। उन्होंने एक बार अपनी ओर देखना चाहा लेकिन वे साहस न जुटा पाए। अपना काला मुँह लेकर वे झट से कक्षा से बाहर निकल पड़े। पैरों के नीचे खड़िया मसल जाने तक का उन्हें होश नहीं रहा। दरवाजे में आकर उन्होंने दुबारा फलक की ओर देखा। उस पर लिखा था, "सर, आज आपकी मिसेस किसके साथ है, यह बता सकते हैं?"

उन्हें लगा एक साथ शरीर में कई बरछें घुस गए हैं, त्वचा के रोम-रोम से खून के फव्वारें बह रहे हैं, शरीर से जान निकलकर वह बेजान हड्डियों के ढाँचे में बदल रही है। कक्षा से स्टाफ रूम तक का फासला केवल चालीस-पचास कदम था। इस पर भी उन्हें लग रहा था कि एक कदम का अंतर पार करते हुए बीच में लंबा अंतराल व्यतीत हो रहा है। उन्होंने बोझिल मन से स्टाफरूम में प्रवेश किया। उन्हें देखकर सहयोगी अध्यापकों की भौहें तन गईं। एक-दो ने तो यहाँ तक पूछा, "क्यों कोरे, जल्द ही लौट आए? तासिका ली या नहीं," कोरे का ध्यान उनकी ओर नहीं था। उन्हें आभास हो रहा था कि अपनी संवेदनाएँ बधिर हो चुकी हैं, स्टाफरूम अपनी ओर देखकर जोर-जोर से हँस रही है, अपने ऊपर पत्थर फेंक रही है। आभास इतना जबरदस्त था कि वे अचानक चौंक पड़े। उन्होंने आलमारी पर रखी अपनी काले रंग की बैग उठाकर गले में लटकाई। सहयोगी अध्यापकों की ओर न देखकर वे बाहर निकल पड़े। वे स्टाफ रूम की बाजू में स्थित प्राचार्य की

केबिन में चले गए। वहाँ से भी तुरंत बाहर निकल पड़े। उन्होंने मैदान में खड़ी अपनी स्कूटर शुरू की तथा घर की दिशा में चल पड़े।

कॉलेज से घर तक की दूरी लगभग दस-पंद्रह मिनट की थी। प्रा. कोरे रोजाना यह अंतर आसानी से पार करते। आज मात्र उन्हें लग रहा था कि रास्ते के सभी लोग अपनी ओर घूर कर देख रहे हैं। हमेशा की भीड़ उन्हें वल्मीक से बाहर निकल रही चींटियों की तरह दिखाई देनी लगी। एक चौराहे पर तो उन्होंने सिग्नल तक तोड़ने का प्रयास किया। लेकिन तुरंत स्वयं को संभाला और स्कूटर पीछे ले ली। गले में सीटी लटकाए वर्दीधारी पुलिस की ओर उन्होंने अपराधी भाव से देखा लेकिन वह दूसरी ही ओर देख रहा था। सिग्नल तोड़ते समय पुलिस ने देखा नहीं इसका उन्हें संतोष हुआ। उन्होंने घर के सामने पहुँचने पर घड़ी देखी। उन्होंने पाया कि आज कॉलेज से घर तक का अंतर रोज की तुलना में पाँच-छह मिनट पहले ही पार कर दिया है। उन्होंने स्कूटर पार्क की। उनका फ्लैट तीसरी मंजिल पर था। हमेशा की तरह सभी फ्लैट के दरवाजे अंदर से बंद थे। उन्होंने अपने आलीशान फ्लैट का दरवाजा खोल दिया। कुंजी के साथ ताला हमेशा की जगह पर रख दिया। गले में लटकाई बैग निकालकर गद्दी पर फेंक दी। बैग की जगह दीवार पर होती थी लेकिन आज उन्हें वहाँ बैग रखने की इच्छा न हुई। उन्होंने दरवाजा अंदर से बंद कर दिया। फैन चला दिया फिर बंद किया। पत्नी कोई संदेश रखकर तो नहीं गई यह देखने के लिए वे टी.वी. के पास चले गए। उनकी नजर टी.वी. पर रखी चिट्ठी पर गई। उन्होंने चिट्ठी उठाई और पढ़ने लगे, "डार्लिंग, मैं आज दोपहर चार बजे तक विधायक टोणपे जी के साथ हूँ। उसके बाद घर आऊंगी। फिर शाम छह से रात एक बजे तक युवा नेता गजमल जी के साथ चली जाऊंगी। उनके साथ फिल्म देखूंगी और खाना खाकर ही घर लौटूंगी। आप भोजन के लिए मेरा इंतजार न करें।"

प्रा. कोरे ने एक लंबी साँस छोड़ दी। गुस्से से चिट्ठी मरोड़कर फेंक दी। फिर उन्होंने कुछ सोचते हुए चिट्ठी उठाकर गद्दी पर पड़े बैग में रख दी। वे गद्दी पर बैठ गए। दीवार से सटाकर रखा लंबा तकिया पास खींचा और उस पर गर्दन रखकर लेट गए। उन्हें पैरों में जूते होने तक की सुध न रही। दीवार पर आकर्षक ढंग से लगाई अपनी पत्नी की आकर्षक वेशभूषा में निकाली सुंदर तसवीर उनकी आँखों के सामने घूमने लगी। वे अत्यधिक कष्ट से उठ गए और तसवीर के पास

चले गए। मूलतः सुंदर होने वाली उनकी पत्नी तसवीर में तो अधिक आकर्षक दिखाई दे रही थी। सुंदर और आकर्षक चेहरा, गौर वर्ण, पहली ही नजर में घायल करने वाली आँखें, सुडौल कदकाठी, गुलाबी होंठ सब कुछ माने सुंदरता का विलक्षण अविष्कार था। प्रकृति ने उसे इतनी सुंदरता प्रदान की थी कि कोई अभिनेत्री तक उसकी सानी नहीं रखती। तसवीर की ओर देख रहे प्रा. कोरे ने अचानक न जाने क्यों अपनी जेब से पेन निकालकर उसके चेहरे पर आड़ी-तिरछी रेखाएँ खिंच दी। उन्होंने तसवीर उलटकर रख दी और आराम से गद्दी पर लेट गए। उनका मन बिजली की गति से बी.ए. की कक्षा में पहुँच गया। उनके सामने फलक पर लिखे अक्षर उभर आए—'सर, आज आपकी मिसेस किसके साथ है?' अक्षरों में छिपा प्रश्न विशालकाय प्राणी की तरह उन्हें घायल करने लगा। उन्हें लगा इस प्राणी की पूरी देह पर लंबें एवं धारदार नाखून हैं। वे अपनी पूरी देह को घायल कर रहे हैं। इससे पूरी देह पर जख्म हो रहे हैं। जहाँ हाथ लगाए वहाँ लहुलुहान जख्म है। वेदनाओं से देह कराह रही है। धमनियों में खून के बजाए वेदनाएँ ही संचार कर रही हैं। उन्हें सहने की शक्ति खत्म हो चुकी है। जख्मों का हिसाब तक लगाना संभव नहीं। फलक पर के प्रश्न ने अब भयावह अजगर का रूप धारण किया है। वह अपने हाथ, पैर, पेट और छाती जकड़ रहा है। बापरे! गला तक जकड़ लिया। दम घुट रहा है।

नहीं-नहीं। कृपया, यह सब बंद करो... मेरी सहनशक्ति खत्म हो गई है...

प्रा. कोरे जोर से चीख पड़े। उन्होंने सहमकर आसपास देखा। धीमी गति से दरवाजे के पास गए और दरवाजा खोला। पड़ोस के दोनों फ्लैट पर नजर घुमाई। दोनों के दरवाजे बंद देखकर उन्हें कुछ राहत मिली। उन्होंने अपने फ्लैट का दरवाजा अंदर से बंद किया और फिर गद्दी पर लेट गए। उन्होंने आँखें मूँदने का प्रयत्न किया। उन्हें लगा कि फलक पर के प्रश्न ने अब तगड़े हाथ का रूप धारण किया है। वह अत्यंत क्रूरता से बंद आँखें खोलने हेतु भौहें और पलकों के बाल खींच रहा है। उन्होंने अपनी दोनों हथेलियाँ आँखों पर रख दी। काफी देर तक वे इसी दशा में थे। वे अधीरता से चार बजने की एवं पत्नी के आने की राह देखने लगे। 'पत्नी' यह शब्द उनके होंठों पर सहज ही आया तो उन्हें लगा कि कोई भूल हो रही है। वे उठ गए और फैन अंतिम गति पर चला दिया। गद्दी पर लेटकर वे फैन की ओर देखने लगे। वे गति से घूमते हुए स्थिर-सा लगने वाला फैन और

अपनी जिंदगी के बीच का अंतर ढूँढ़ने लगे। मस्तिष्क को तनाव देने के बावजूद वे यह अंतर ढूँढ़ने में असफल रहे।

फैन की गति के साथ प्रा. कोरे अतीत में प्रवेश कर रहे थे। कई वर्षों का पर्दा दूर होकर उनके सामने अतीत मूर्त हो आया। पच्चीस की अवस्था का अविनाश कोरे। प्रा. अविनाश कोरे। उसकी कदकाठी मजबूत थी लेकिन सुंदरता का कहीं नामोनिशान तक नहीं था। उसकी नाक चिपटी, बाल घुंघराले और शरीर बेढब था। उसने अत्यधिक कष्ट झेलकर पढ़ाई पूर्ण की और प्राध्यापक की नौकरी हासिल की। दो-तीन साल नौकरी की तो उसके विवाह की बात चल पड़ी। विवाह के लिए लड़कियाँ देखना आरंभ हो गया। सहयोगी अध्यापक और मित्र मजाक में कहते, "अविनाश, क्यों गाँव-गाँव खाक छान रहे हो? कॉलेज की ही कोई युवती जाल में क्यों नहीं फंसा लेते।" अविनाश को भी यह बात भाती थी लेकिन सुबह आइने में चेहरा देखते ही वह मायूस बन जाता। कोई अपने ऊपर लट्टू हो जाए ऐसा तो अपना व्यक्तित्व नहीं है? अपने पास तो विद्वत्ता भी नहीं है। अपनी तासिका तक छात्रों को उबाऊ एवं नींद लेने की लगती है। कॉलेज में अपनी प्रतिमा तो ऐसी ही है। इस पर कॉलेज की कोई युवती कैसे प्रेम कर पाएगी?

अविनाश के माता-पिता का लड़कियाँ देखना जारी था। उन्होंने दो-चार लड़कियाँ देखी। उनमें से एक एम.ए. पास की हुई थी लेकिन उसने अविनाश मेरे काबिल नहीं कहकर इंकार कर दिया। इससे अविनाश हतोत्साह हो गया। अंततः बेलवाड़ी के माने की लड़की शेवंता से रिश्ता पक्का कर दिया। वह मात्र आठवीं कक्षा तक पढ़ी थी। वह गँवार लड़की का एक जीता-जागता नमूना थी। शेवंता का चरित्र एवं खानदान अच्छा होने से अविनाश के माता-पिता ने उसे पसंद किया। धूमधाम के साथ विवाह संपन्न हुआ। अविनाश शेवंता को साथ लेकर शहर चला गया। उसने पुराना क्यों न हो लेकिन एक बड़ा-सा घर खरीद लिया। दोनों की गृहस्थी आरंभ हो गई।

दोनों शहर में घूमने चले जाते। रास्ते पर अन्य अच्छी दंपतियाँ देखकर अविनाश को अटपटा लगता। उसे लगता कि अपनी पत्नी अत्यधिक गँवार है। उसने गँवारपन के तहत अपनी नक्षत्र-सी सुदंरता की हत्या की है। रास्ते चलते समय वह मेरे पीछे दस-पंद्रह कदम रहती है। वह शिष्टाचार का पालन करना भी

नहीं जानती। वह न ठीक ढंग से बोल पाती है न मित्रों के साथ गपशप कर सकती है। उसने कई बार उसे समझाने की कोशिश की लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ।

एक दिन उसने कॉलेज की क्रेडिट बैंक से चार हजार रुपये कर्ज के रूप में लिए। कॉलेज से छुट्टी हुई तो वह घर आया। भोजन करने के पश्चात् वह शेवंता को साथ लेकर बाहर निकला। वे सीधे ब्यूटी-पार्लर में चले गए। उसने उसकी केशभूषा आकर्षक करने की सूचना दी। शेवंता बाल काटने की कल्पना से दुःखी होकर रोने लगी। अविनाश ने उसे डाँटकर चुप कर दिया। लंबी चोटी के स्थान पर बॉबकट देखकर शेवंता चीख पड़ी। लेकिन पति के आगे कोई चारा नहीं था। अविनाश ने उसके अनुरूप वेशभूषा को लेकर पूछताछ की। कपड़ों की दुकान में जाकर दो साड़ियाँ एवं उस पर मैचिंग होने वाले दो ब्लाऊज खरीद लिए। साथ ही दो पंजाबी ड्रेस, लिपस्टिक, पावडर, स्नो, सेंट आदि सामान खरीद लिया। घर पहुँचते ही उसे नई वेशभूषा करने को कहा। नई वेशभूषा में शेवंता और भी सुंदर दिखाई देने लगी। अविनाश तो उसकी ओर देखता ही रह गया। दोनों मेन रोड की ओर घूमने चले गए। घूमते समय दोनों के बीच की दूरी कम हो गई। शेवंता का यह नया रूप देखकर सभी अचरज में पड़ गए। पहले ही प्रकृति ने उसे मुक्त हाथ से सुंदरता प्रदान की थी, जिसे देखकर कोई भी ईर्ष्या किए बिना नहीं रहता। नई वेशभूषा से तो वह चांदनी की तरह खिल रही थी। अविनाश ने शेवंता की सुंदरता को बाधा न पहुँचे इसलिए कुछ दिन बच्चों के मोह से दूर रहने का निर्णय लिया। अब रोजाना सुबह दोनों घूमने जाने लगे। मित्र मंडली मिलने पर चाय-पान होता। सभी शेवंता के सौंदर्य की, वेशभूषा की तारीफ करते।

दूसरे महीने में अविनाश ने फिर कपड़ों की खरीद की। अब तो सुबह, दोपहर, शाम एवं रात की वेशभूषा तक अलग-अलग हो चुकी थी।

कुछ दिनों के पश्चात् अविनाश की समझ में आया कि आजकल रास्ते से गुजरते समय युवा लड़कों के झुंड अपना पीछा करते हैं। ऐसे ही झुंड चौराहे-चौराहे पर शेवंता का इंतजार करते हुए बैठे रहते हैं। उसकी ओर निगाहें गड़ाकर देखते हैं। अश्लील विनोद करते हैं। भीड़ में जान-बूझकर उसे धक्का देने का प्रयत्न करते हैं। मेरी ओर कोई देखता तक नहीं। शेवंता की कुछ सहेलियाँ तो यहाँ तक कहतीं, "अविनाश जैसा अफ्रिकन पति क्यों पसंद किया? इससे अच्छा होता कि गले में

लट्ठा बांधकर घूमती।" शेवंता की दशा डाँवाडोल होने लगी। सहेलियों की बातों में तथ्य लगने लगा।

अविनाश ने शेवंता की तरह घर भी सुंदर बनाने हेतु फिर कर्ज ले लिया। घर में सोफा-सेट, सुंदर आलमारी, ड्रेसिंग टेबल, डायनिंग टेबल, आरामकुर्सियाँ, रंगीन टी.वी., पाँच-पंद्रह गमलें जैसी कई चीजें आ गई। घर सुंदर बन गया। शेवंता सज-धजकर रहने लगी। दूसरी ओर वेतन में कटौती होने लगी। महीने के तीस दिन जैसे-तैसे गुजारने पड़ रहे थे। आगे चलकर तो दशा और भी नाजुक बन गई। पुराने कर्ज चुकाने हेतु नया कर्ज, फिर उसे चुकाने हेतु नया कर्ज... इस तरह वह बुरी तरह कर्ज की जकड़न में फंस गया। रुपए मिलने के लगभग सभी रास्तें बंद हो रहे थे। इससे पति-पत्नी में खींचा तानी आरंभ हो गई। छोटी-छोटी बातों पर कलह होने लगा। अविनाश कहता कि "तुम सुंदर एवं मॉड दिखाई दो इसलिए मेरे सिर पर कर्ज का पहाड़ बन गया।" इस पर शेवंता कहती, "मैंने तो आपको ऐसा करने को नहीं कहा था ?" कलह चरमसीमा पर पहुँच जाता। अभद्र शब्द एवं भाषा का प्रयोग होता। एक दिन तो अविनाश ने यहाँ तक कहा, "तुम्हारे ही कारण इतना कर्ज हो गया है। अब इसे तुम ही चुकाओ। चाहे तो एकाध दिन स्वयं को बेचकर इसे चुकाओ।" कलह के बिना एक दिन तक नहीं गुजर रहा था।

एक दिन अविनाश घर का टी.वी. बेचने का विचार कर रहा था। उसने एक ग्राहक से बातचीत भी की। कीमत को लेकर कुछ चखचख हो रही थी। शाम को उसने यह बात शेवंता को बता दी। शेवंता एक पल शांत रही। फिर वह अंदर के कमरे में चली गई और हाथ में पर्स लेकर बाहर आई। उसने पर्स से दस हजार रुपए निकाले। अविनाश को रुपए देते हुए उसने कहा, "हमारे परिचित बिल्डर हरीश से मैंने रुपए लिए हैं। मैंने उसे अपनी हालात बताई तो उसने तुरंत रुपए दे दिए। उसने यह भी कहा कि आप सुविधा के अनुसार रुपए वापिस कीजिए, चिंता मत करें।"

अविनाश को आश्चर्य हुआ लेकिन उसने उसे सुलझाने का प्रयत्न नहीं किया। उसने टी.वी. बेचने का निर्णय रद्दं कर दिया। शेवंता ने फिर क्रमशः पाँच हजार और दस हजार रुपए लाकर दिए। अविनाश का आश्चर्य बढ़ने लगा। उसके टोकने पर शेवंता ने अत्यधिक खुशामद भरे अंदाज में कहा, "देखिए, यह आप भी जानते हैं कि रुपए कोई खैरात में नहीं बाँटता। यदि हम कर्ज के जाल में अटक जाते तो

आत्महत्या के सिवा हमारे पास कोई चारा नहीं होता। इससे बचने के लिए मैंने एक राह ढूँढ़ ली। मैंने सोचा ईश्वर ने इतना सौंदर्य प्रदान किया है तो क्यों न उसका लाभ उठाऊँ? एक सहेली की सहायता से मैंने हरीश और उसके मित्रों के साथ संबंध स्थापित किए। वैसे वे इसकी ताक में ही थे। उन्होंने मुझे रुपए दिए और मैंने उन्हें वे जो चाहते थे वह दे दिया।"

"छी. छी! यह तुम क्या कह रही हो? यह सब झूठ है।" अविनाश ने अचानक बौखलाकर कहा।

"शांत रहिए। मैं सब कुछ बता दूँगी, अजी, मैंने कुछ गैर किया है ऐसा मुझे तो नहीं लगता। सुना है मुंबई में कई पत्नियाँ इसी तरह रुपए कमाकर अपनी गृहस्थी मजे में चलाती हैं। दूसरी बात यह है कि मैं अंततः रहूँगी तो आपके साथ ही। हम पति-पत्नी संबंध थोड़े ही तोड़ रहे हैं? आप चिंता मत कीजिए। मैं ऐसा अपनी गृहस्थी के लिए ही कर रही हूँ।" शेवंता जी तोड़कर बोल रही थी।

अविनाश के चेहरे पर अचानक खुशी झलक उठी। उसने शेवंता का सिर प्यार से सहलाते हुए कहा, "शेवंता, वाकई मुझे तुम पर नाज है। तुम सिर्फ सुंदर ही नहीं होशियार एवं त्यागी भी हो। तुमने जो किया उसकी सफाई भी तुम्हारे पास है। लेकिन तुम्हें धक्का लग जाए ऐसी एक बात बताता हूँ। तुमने जो कुछ किया है उसमें हमारा मतैक्य है।"

"मैं कुछ समझ नहीं पाई? आप कहना क्या चाहते हैं?" शेवंता ने कौतुहल से पूछा। इस पर अविनाश ने कहा, "अरी, बिल्कुल आसान है। तुम्हें जो लगता है वही मुझे भी लगता है। मेरे मन में भी ऐसा ही विचार आया कि अपने पास होने वाला सौंदर्य बाँटकर क्यों न लखपति बने और जिंदगीभर ऐशआराम में रहे। बिल्डर हरीश से तुम्हारी भेंट की योजना मैंने ही बनाई थी। वह सफल हो गई। दो-तीन दिन में हमारे पास पंद्रह-बीस हजार रुपए आ गए। कर्ज से मुक्त होने की और ऐश आराम की जिंदगी जीने की कुंजी मिल गई। इस बात का मात्र ध्यान रखो कि यह बात बाहर खुल न जाए।"

अविनाश की बातें सुनकर शेवंता वाकई चकरा गई। उसे विश्वास हुआ कि मैंने जो कुछ किया उसके पीछे अपने पति की नियोजनबद्ध साजिश थी। अब कुछ बोलने से भी कोई लाभ नहीं था। वह एक अलग राह पर भटक चुकी थी। अगले दो मास में किस-किसके साथ रातें बितानी है यह तक तय हो चुका था।

अविनाश के घर में अब रुपयों की कमी नहीं थी। उसने चार-पाँच कमरों का नया फ्लैट खरीद लिया। वह राजसी ठाट-बाट में रहने लगा। वह केवल समय काटने के लिए प्राध्यापक की नौकरी कर रहा था। उसके दो-तीन महीने के वेतन जितने रुपए तो शेवंता दो-तीन दिन में ही कमाकर लाती थी। उसे लेने और छोड़ने मोटरें आने लगी। शरीर पर गहनें दिखाई देने लगे। घर में विदेशी चीजें आ गई। हम कुछ गलत कर रहे हैं ऐसा अविनाश को बिल्कुल नहीं लगता था।

देखते-देखते शेवंता कॉलगर्ल बन गई। उद्‌योगपति, नेता कार्यकर्ता और जिनके पास रुपए हैं वे सभी उसके पास आने लगे। उसे साथ लेकर कोई मुंबई, कोई पाचगणी तो कोई गोवा जाने लगा। कुछ ही दिनों में यह बात पूरे शहर में फैल गई। कॉलेज में, स्टाफरूम में पहुँच गई। सहयोगी अध्यापक कानाफूसी करने लगे। अविनाश ने उसकी ओर नजरअंदाज किया। लेकिन जब छात्रों ने फलक पर लिखित रूप में ही प्रश्न पूछा तो उसे गहरा सदमा पहुँच गया। उसके अंदर का प्रा. कोरे जाग्रत हो गया।

प्रा. कोरे फैन से नजर हटाने को तैयार नहीं थे। अतीत की बातें उन्हें डंक की तरह चोट कर रही थी। वर्तमान के डंक घायल कर रहे थे तो भविष्य फण फैलाकर डंक मारने के पैंतरे में खड़ा था।

कॉलबेल बज गई तो वे होश में आ गए। दरवाजा खोला तो सामने शेवंता को पाया। घर में आते ही उसे विभिन्न अभिनेत्रियों के नाम से पुकारने वाले प्रा. कोरे आज बिल्कुल खामोश थे। वे चुपचाप कुर्सी में बैठ गए। शेवंता अंदर आई। उसने मुँह धोया और आइने के सामने खड़ी हुई। वह कोई गीत गुनगुनाती हुई बाहर आ गई। अविनाश का गंभीर चेहरा देखकर उसने पूछा, "अजी, आज इतने गंभीर क्यों बन गए हैं?"

"मैंने नौकरी का इस्तीफा दे दिया है।"

"चलो, अच्छा ही हुआ। वरना दिन भर मुँह बजाकर इस नौकरी में मिलता ही क्या था। मैंने तो आपसे पहले ही नौकरी छोड़ने को कहा था।"

"शेवंता, बात वह नहीं है। मेरे इस्तीफा देने का कारण अलग है।"

"कुछ भी हो लेकिन अच्छा ही हुआ।"

"देखो शेवंता, मेरे पास बैठो। तुम्हें मैं कुछ बताना चाहता हूँ। दरअसल विषय गंभीर है।"

"शेवंता उसके सामने कुर्सी में बैठ गई। वह भी गंभीर बन गई थी। वह समझ नहीं पा रही थी कि अचानक अपने पति को क्या हो गया है। प्रा. कोरे बोलने लगे," "शेवंता, मैंने रुपए के लिए तुम्हें जो कुछ करने को विवश किया वह लांच्छनास्पद है। रुपए एवं विलासी जीवन के नशे में मैं अंधा बन गया था। आज छात्रों ने कक्षा में फलक पर ही लिखा, 'सर, आज आपकी मिसेस किसके साथ है ?' यह पढ़कर मुझे गहरा धक्का लगा। मैं शर्मींदा हो गया। आज छात्रों ने प्रश्न लिखा, कल वे उत्तर भी लिखेंगे और परसों तुम्हारी माँग तक कर सकते हैं। सचमुच हम गलत रास्ते पर भटक गए थे। हम सुख एवं संतोष की परिभाषा समझ नहीं पाए। अब तुम स्वयं को बेचना बंद कर दो। दोनों यह शहर छोड़कर गाँव चले जाएंगे। हम गाँव में खेती करेंगे लेकिन शहर के इस वासना चक्र में अब बिल्कुल नहीं रुकेंगे। मैं एक पल भी यहाँ रहना नहीं चाहता हूँ। छात्रों द्वारा पूछा प्रश्न भूत की तरह मेरा पीछा कर रहा है। शायद मैं पागल हो जाऊंगा, मर जाऊंगा। मेरी मृत्यु पर कोई आँसू तक नहीं बहाएगा, पूरा शहर हँसेगा। शेवंता, तुम इंकार मत करना, प्लीज शेवंता, प्लीज...."

प्रा. कोरे का गला भर आया। वे झट से उठ गए और उन्होंने शेवंता के पैरों पर सिर रख दिया। शेवंता का गला भर आया। वह कुछ बोल न पाई। वह अंदर के कमरे में चली गई और विवाह के समय की सहेजकर रखी हुई साड़ी पहनकर बाहर आ गई। उसे इस रूप में देखकर प्रा. कोरे का दिल भर आया।

❑ ❑

नए फ्लैट में

हरजेन्द्र चौधरी

माँ हमारे नए फ्लैट में बिल्कुल भी खुश नहीं थी। हमारी खुशी के लिए उन्होंने अपना दुःख अपने सीने में दबा रखा था। कारण यह नहीं था कि माँ के नाम जो पुराना पुश्तैनी मकान था, वह बेचकर (और थोड़ा सा 'लोन' जोड़कर) हमने अपनी पत्नी के नाम यह मकान खरीदा था; बल्कि यह था कि यह 'फ्लैट' घर जैसा नहीं लग रहा था। 'भारतीय घर' के पारम्परिक 'फ्रेम' में यह 'फ्लैट' 'फिट' नहीं बैठ रहा था। दीवारों में आले नहीं थे, कमरों में सामान रखने को ताख नहीं थे, बाहर 'चौंतरा' नहीं था, जिस पर शाम को माँ की हम उम्र बूढ़ी औरतें आकर बैठ-बतिया सकें। इस फ्लैट में अभी तक न तो तुलसी वाला गमला आया था और न ही दीवारों पर धार्मिक-पौराणिक तस्वीरों वाले नए-पुराने कैलेंडर टँगे थे। फ्लैट में आँगन नाम की कोई खुली जगह नहीं थी। यहाँ माँ की बदहवासी मौन थी, पर उनका अनमनापन पूरे चेहरे से न सही, उनकी आँखों से ज़रूर व्यक्त हो रहा था।

माँ के घुटनों का दर्द पिछले से पिछले साल पिताजी के अचानक चले जाने के बाद से काफ़ी बढ़ गया था। गठिया और डिप्रैशन का सीधा रिश्ता है, माँ को देखकर मैंने निष्कर्ष निकाला।

माँ के घुटनों में यह दर्द कई साल पहले उगना शुरू हो गया था। तब भाभी बहुत लड़ाकी थी। हर बात पर माँ से उलझ जाती थी। घर में चिख-चिख होती ही रहती थी। भाई साहब की शादी के समय मैंने बी०कामॅ० सेकेण्ड ईयर का इम्तिहान दिया था। भाभी के उस घर में आने के थोड़े दिनों बाद ही घर की हवा बदलने लगी थी। ऐसे माहौल में मेरी पढ़ाई 'डिस्टर्ब' होती थी। फिर भी मैंने चव्वन प्रतिशत अंक लेकर एम०कॉम० पास कर ली थी। माँ की आँखों की बुझती हुई चमक उस दिन फिर से लौट आई थी, जिस दिन मेरी नौकरी लगने की खुशख़बरी घर पहुँची। उसके तुरंत बाद माँ मेरी शादी के सपने देखने और उसकी तैयारी में लग गई। मेरी शादी होने के बाद यह घरेलू झगड़ा तिकोना हो गया। मैं दिन भर दफ़्तर में रहता, पिताजी और भाई साहब दुकान पर बैठते और पीछे से घर में किसी न किसी बात पर, या बिना किसी बात के ही, झगड़ा हो जाता। कुछ दिनों बाद मेरी पत्नी ने खुलकर माँ के समर्थन मे बोलना शुरू कर दिया था। इस तरह की सब शुरूआतें आगे बढ़ती गईं और एक दिन पिताजी ने अपना फ़ैसला सुना दिया—'यह मकान तुम्हारी माँ के नाम है। वो जो करना चाहें, करें।' उस शाम भाई साहब ने भाभी जी की पिटाई कर दी और अगले दिन से वे घर के बाकी सब सदस्यों पर भुनभुनाने लगे। भाभी ने कुछ दिन जुबान दबाए रखी, लेकिन भाई साहब महीने भर का समय बीतते-बीतते एक दिन आगबबूला हो उठे। उस दिन कोई ठोस वजह नहीं थी, पर शायद पुराना गुबार बढ़ते-बढ़ते काफ़ी बढ़ गया था।

अन्ततः पिताजी ने खारी बावली स्थित 'चार बाई बारह फुट' वाली अपनी ड्राई फ्रूट्स की दुकान भाई को देकर उन्हें 'अल्टीमेटम' दे दिया कि अपना रहने का ठिकाना कहीं और करें। पिताजी का गठिया काफ़ी बढ़ गया था। घुटनों की सूजन पूरी तरह तो कभी भी नहीं उतरती थी, थोड़ी बहुत हमेशा बनी रहती थी। उन्होंने दुकान पर बैठना पहले ही कम कर दिया था, पर 'बँटवारे' के बाद बिल्कुल ही बंद कर दिया।

भाई साहब ने जब घर छोड़ा, तब हमारी मुन्नी तीन साल की हो चुकी थी। घर छोड़कर जाने (या शालीनता से कहें तो घर 'शिफ्ट' करने) के बाद भाई साहब कभी उधर झाँकने भी नहीं आए। माँ का मौन इन्तज़ार धीरे-धीरे दम तोड़ता चला गया। भाई साहब का व्यवहार माँ के मोह की जड़ों में मट्ठा डालता रहा और पिताजी धीरे-धीरे भीतर से खोखले होते चले गए। वे हर रोज़ कई-कई घंटे पूजा-पाठ में बिताने लगे थे।

एक दिन पिताजी कुछ ज़्यादा ही देर तक पूजा पर बैठे रहे। मेरी पत्नी ने उनकी एक गिलास गुनगुना दूध पीने की आदत के तहत समय पर दूध उबालकर, गिलास को ढँककर रसोई में रख दिया था और मुन्नी को नर्सरी स्कूल के लिए तैयार करने लगी थी।

माँ ने पिताजी से कहा—'देर हो गई आज तो!'

वे उसी तरह बैठे रहे—आलथी-पालथी लगाए। उनके दोनों हाथ जुड़कर माथे पर टिके थे या कहें कि उनका माथा जुड़े हुए हाथों पर टिका था और दोनों कुहनियाँ उनके सूजे हुए घुटनों पर या उनके आसपास कहीं थीं। यह उनकी दैनिक, सामान्य पूजा-मुद्रा थी।

टोके जाने पर भी पिताजी चुप रहे। माँ ने फिर टोका, फिर भी वे चुप रहे। माँ ने उनको ज़रा-सा हिला दिया। वे लुढ़क-से गए। फर्श से दो फुट भर ऊँचे आले में शिवजी की मूर्ति के पैरों पर उनका माथा जा टिका। माँ की चीख सुनाई पड़ी तब मैं नहा रहा था। तौलिया लपेटकर टपकते शरीर बाहर भागा। ..... इस तरह अचानक गए पिताजी!

भाई साहब के पास खबर भेजी तो वे आए। माथे और आँखों पर साड़ी का पल्ला रखे पीछे-पीछे भाभी जी भी थी। वे दोनों इस तरह आए, जैसे वे पहले से पिताजी की मौत के बारे में जानते थे या जैसे वे उनके गुज़रने के इन्तज़ार में थे।

काफ़ी दिनों बाद तक मुझे लगता रहा कि घर पहुँचूगा तो पिताजी बाहर वाले कमरे में, जिसे हम बैठक कहते थे, बैठे मिलेंगे। एकाध बूढ़ा पड़ौसी या बच्चे उनके पास बैठे बातें कर रहे होंगे या बच्चे 'आइस-पाइस' खेलते चिल्ल-पौं मचा रहे होंगे।

पर चिल्ल-पौं भी मची होती, अपने और पड़ोसियों के बच्चे भी खेलते दिख जाते। पर पिताजी नहीं दिखते। मुझे झटका-सा लगता। धीरे-धीरे यह झटका लगना कम होते-होते बंद हो गया। पिताजी की उपस्थिति की जगह उनकी अनुपस्थिति के अहसास ने ले ली। फिर मैं उन्हें भूल-सा गया, जैसे वे वहाँ असल में कभी थे ही नहीं।

पर माँ, हर सुबह, उसी वक़्त, वहीं बैठकर पूजा करतीं। उसी मुद्रा मे बैठतीं। मुझे अचरज होता कि उन्होंने पिताजी की निजी जीवनचर्या का 'अधिकतर' कैसे अपना लिया है। कभी-कभी सर्दी की किसी दोपहर धूप में या गर्मी की किसी शाम

छाया में हमारे घर के बाहर बने चबूतरे पर अनेक बूढ़ी औरतें आ बैठतीं। पुरानी दिल्ली का यह पुराना मोहल्ला आबाद दिखता, ज़्यादा आबाद दिखता। बच्चे बड़े हो रहे थे, उनकी शरारतें बढ़ रही थीं। उनकी ज़िन्दगी में दादी की ज़रूरत घट रही थी। चीज़ों के घटने-बढ़ने के बीच सूनेपन की महीन दरारें पूरे घर की हवाओं में व्याप्त होती जाती। पूरे घर का सूनापन माँ की आँखों में जा बसा। वे चुप रहतीं। चुप्पी से यह सूनापन और ज़्यादा उभर आता। उभार के दौर में वे कभी शिव जी और पार्वती की मूर्तियों के आगे हाथ जोड़ कर कुछ बुदबुदातीं और एक लंबी आह भरतीं। कभी-कभी घुटनों के बढ़ते दर्द से कराहतीं।

—'पूजा करते हुए गए। स्वर्ग में होंगे।' — बिना संदर्भ के कभी-कभी माँ पिताजी की मृत्यु की क्षणिक चर्चा करती और फिर इस तरह चुप हो जाती जैसे कि अभी-अभी जो बोला, वह कोई और था, माँ नहीं थी। मेरी पत्नी हर समय माँ का ध्यान रखती, फिर भी माँ ऐसे रहतीं जैसे कि वे कहीं और रहती हैं।

ऐसे में हमें अवसर के अनुसार उनसे बात करने का विषय तय करना पड़ता। मैंने एक दिन भोजन के बाद माँ से कहा—'माँ, कार खरीद लूँ ?' हम पाँचों जने एक डबल बैड पर बैठे थे। दोनों बच्चे एक रजाई में, माँ दूसरी रजाई में, मैं शॉल पैरों पर डाले। पत्नी बिना रजाई-शॉल के बैठी धीरे-धीरे माँ के पैर दबा रही थी।

—'कार ? ... हाँ-हाँ, खरीद लें!' — यह कहते हुए माँ की आँखों में चमक आई और आकर वहीं टिकी रही। वहाँ बसा सूनापन काफ़ी कम हो गया था।

अगले ही दिन से मैंने शाम के समय अपने दफ़्तर के पास वाले ड्राईविंग स्कूल से 'ड्राईविंग' सीखनी शुरू कर दी। डेढ़-दो महीने बाद कार आ गई। लगने लगा कि जीवन में एक नए मकसद ने अपनी जगह बना ली है। अपनी चाल में मुझे कुछ तेजी महसूस होने लगी थी।

पर कार खरीदने के बाद जल्दी ही मुझे अहसास हो गया कि पुरानी दिल्ली के कटरों और कूचों में रहने वाले, हम जैसे, लोगों के लिए कार कोई सुविधाजनक सवारी नहीं है। जहाँ तक स्कूटर ही मुश्किल से पहुँच पाता हो, वहाँ कार जैसा बड़ा वाहन कैसे जा सकता है ? मुझे कार को घर से काफ़ी दूर छोड़ना पड़ता। दो महीने के भीतर दो बार चोरी हुई। शुरू में शीशों के चौगिर्द लगे कुछ रबड़ तथा फिर एक रात दो पहिये गायब हो गए। यह समस्या मुझे ठोकर की तरह लगने लगी। ठोकर से बचने के लिए मैं नई दिल्ली की खुली-चौड़ी सड़कों पर निकल जाता। 'निकल

जाने' के दौर में ही मैं माँ, पत्नी और बच्चों को छतरपुर मंदिर, कुतुबमीनार और इंडिया गेट घुमाने ले गया था। देर शाम को लौटते हुए हम सबने 'इंडिया गेट' पर 'आइसक्रीम' खाई थी। बच्चों के इम्तिहान खत्म हो चुके थे। होली का त्यौहार जा चुका था। अभी गर्मी नहीं आई थी, पर इंडिया गेट पर घूमने आए ज़्यादातर परिवार आइसक्रीम खा रहे थे। हम भी खा रहे थे, क्योंकि सब खा रहे थे।

बचे हुए दाँतों और सूजे हुए मसूड़ों में आइसक्रीम की ठंडक लगी तो माँ के मुँह से अजीब-सी आवाज़ निकली।

—'दादी जी क्या हुआ?'—चुन्नू ने हँसकर पूछा।

—'बहुत ठंडी है, दाँतों में लग रही है।'—माँ ने कहा। वे हँस रही थीं। वे सचमुच खुश थीं। हमारी खुशी में शामिल होने में खुश थीं।

तीर्थयात्रा और पर्यटन के मिश्रित रूप वाली यात्राएँ आजकल के नए परिवारों को बहुत 'सूट' करती हैं। 'चेंज' भी हो गया और धर्मलाभ भी। तीन-तीन पीढ़ियों के बीच बेहतर समायोजन का बेहतर रास्ता हैं ऐसी यात्राएँ। हम यही किया करते थे। हमने एक दिन फिर से घूमने का प्रोग्राम बनाया। माँ की इच्छा थी कि कालका जी मंदिर देखा जाए। बच्चे 'इंडिया गेट' जाना चाहते थे। मैने उन्हें 'बहाई मंदिर' देखने की बात पर मना लिया। माँ कालका जी मंदिर में 'मत्था टेककर' खुश थीं, बच्चों ने 'बहाई मंदिर में ज्यादा एन्जॉय किया।'

—'यहाँ से वहाँ मंदिर के चबूतरे तक कुछ-कुछ ताजमहल जैसी 'लुक' देता है; नहीं पापा?'—मुन्नी ने अपनी राय से मुझे 'कन्विंस' करना चाहा। तब वह सैकिंड में पढ़ती थी, चुन्नू नर्सरी में था।

—'बहुत सुंदर है'—मेरी पत्नी ने कहा।

माँ धीरे-धीरे चल रही थीं। बच्चे दौड़ रहे थे। पत्नी की चाल भी अपेक्षाकृत तेज थी। मैं कभी धीमा होकर माँ का साथ दे रहा था तो कभी तेज चलकर पत्नी का। सबका एकदम साथ-साथ, समान्तर चलना मुश्किल था। फिर भी हम सब एक 'संयुक्त परिवार' थे। साझी ज़िन्दगी को बनाए रखने के लिए घूमने जाते समय हम हमेशा माँ को साथ ले जाते थे। कार घर से दूर 'पार्क' करनी पड़ती थी, माँ धीरे-धीरे चलकर आतीं-जातीं। घुटनों का दर्द और उम्र का असर उन्हें तेज चलने से रोकता। पर माँ खुश थीं।

जब वे पहली बार हमारी इस नई कार में बैठी थीं तो सीट के पिछले, खड़े हिस्से पर पीठ टिकाईं, हटाईं; फिर से टिकाकर हटाईं और फिर बोलीं—आज वे होते तो कितने खुश होते!' हम चुप रहे। मुझे लगता रहा, जैसे, पिताजी अब भी माँ के साथ रहते हैं। उनके भीतर, उनकी स्मृतियों में। खुशी महसूस करने की कोई भी स्थिति आने पर वे पिताजी की फैलती उपस्थिति को अपने भीतर नहीं अँटाए रख पातीं। उनकी उपस्थिति माँ के मुख से बोलने लगती है।

मैंनें कभी नहीं सोचा था कि हम अपने पुश्तैनी मकान को बेचकर कहीं और रहने लगेंगे। कार खरीदने के बाद गलियों, कटरों, कूचों का तंग स्वभाव और पुरानी दिल्ली की भीड़ मुझे अखरने लगी थी, तब भी नहीं। कुछ परिवार अपने अपने मकान बेचकर 'बाहर' निकल रहे थे।

मेरी पत्नी ने एक रात मुझसे धीरे-धीरे कहा—'आज ये नीरा जैन की माँ आई थी। कह रही थी कि मकान बेचकर कहीं बाहर निकलना चाहते हैं। .... हम भी अगर ये मकान बेचकर कहीं खुली जगह बस जाएँ तो?' तब मेरे मुँह से झट से 'नहीं' निकला था। पर बाद में मैंने इस पर गंभीरता से सोचना शुरू कर दिया। शनिवार-इतवार को अखबारों में छपे प्रॉपर्टी के कॉलम ध्यान से पढ़ने लगा। एक दिन अपने कुलीग मनीष अग्रवाल के साथ जाकर दो-चार जगह डी०डी०ए० फ्लैट्स और बिल्डर्स फ्लैट्स भी देखकर आया। पर मैं माँ से बात किए बिना कोई भी फैसला नहीं लेना चाहता था।

मैं डर रहा था कि माँ को बुरा लगेगा। वे शायद अपनी मृत्यु तक इंतज़ार करने को कहेंगी। फिर भी हिम्मत करके एक दिन मैंने बात छेड़ ही दी—'माँ, बुरा मत मानना। अपनी मर्ज़ी से 'हाँ' या 'ना' जो कहना हो, कह देना। हम ये मकान बेचकर कहीं नई खुली जगह मकान खरीद लें?'—मै। एक साँस में सब कह गया। बीच में रूक जाता तो शायद कह नहीं पाता।

वह इतवार का दिन था। माँ पूजा से उठकर आई थीं। उन्होंने मेरी और ऐसे देखा जैसे कि उन्हें मेरा बोला कुछ भी समझ ही न आया हो। उस एक कोरे रिक्त क्षण में एक महीन ठंडी शिला मेरे माथे से शुरू होकर छाती, पेट और जांघों से होती दोनों घुटनों में जा ठहरी।

—'जो करना हो, करो। तुम्हारी मर्ज़ी। मै क्या साथ लेकर जाऊँगी?'—उन्होंने उदासीनता से कहा। शायद उनको हमारी योजना की भनक पहले ही लग चुकी थी।

हमारा डर खुल गया। अगले कुछ दिनों तक मैंने माँ को कुछ फ्लैट्स दिखाए। बिल्डर्स फ्लैट्स देखते ही मेरा मन करता था कि बस, अभी, इसी वक्त, इनमें से किसी फ्लैट में 'शिफ्ट' कर लें। बड़ी शीशेदार खिड़कियों से आती रोशनी में फर्श का दूधिया मार्बल मेरी आँखों की चमक को बढ़ा देता।

माँ कहतीं—'तुम पसंद कर लो पहले। बहू को भी दिखा लो।'

अंततः हमने दो सौ गज 'प्लॉट एरिया' में बना यह फ्लैट पसंद किया। ग्राउंड फ्लोर, पार्किंग, बच्चों का कमरा अलग, मेहमानों का अलग, माँ का यह छोटा-सा कमरा अलग, ड्राईंग रूम के साथ लगी काफी खुली, बड़ी लॉबी....

हम माँ को फ्लैट दिखाने लाए तो वे अपने पुराने घर से इस नए फ्लैट की तुलना करने की कोशिश और न कर पाने की हताशा में थोड़ी देर चुप रही, फिर बोली—'तुम्हें पसंद है तो ठीक है। मुझे अब कौन-सा ज़्यादा दिन रहना है!'

—'क्या मम्मी, आप हमेशा ऐसी बातें करते हो। आपको चुन्नू की शादी तक तो रहना ही है।'—मेरी पत्नी ने हताशा को उल्लास में बदलने का प्रयास किया।

माँ हँसी। उनकी आँखों में चमक थी।

ख़रीद, फरोख़्त, ऋण, पॉवर आफ़ॅ अटॉर्नी, ट्रांसफर, सेल-डीड, ब्लैक-मनी, व्हाइट-मनी, हाउस-टैक्स—इन शब्दों के असली मतलब अब आकर मेरी समझ में आए। दो-ढाई महीने लगे। पुश्तैनी मकान की सेल-डीड, पॉवर ऑफ़ अटॉर्नी कराते समय माँ खोई-खोई रही। खैर, सब निपट गया। अंततः हमने इस नए फ्लैट में शिफ्ट कर लिया। नई दिल्ली के नए मकान में नई ज़िन्दगी शुरू हो गई।

हम खुश थे। माँ भी खुश दिखने की कोशिश करती। उनकी दृष्टि हमेशा कुछ ढूँढ़ती-सी रहती, जैसे कि वे कोई बहुत ज़रूरी चीज़ कहीं रखकर भूल गई हों। पत्नी कभी किसी साप्ताहिक बाज़ार से सजावट की सस्ती चीज़ें ले आती तो कभी 'इतने पुराने पर्दों' को बदलने की चिंता करती। वह दुबारा कभी-कभी कविता लिखने लगी थी। पुराना शौक नए रूप में सामने आ रहा था। उसकी भाषा में भी कविता झलकती—'दीवारें इतनी उजली और चकाचक, और हमारे पर्दे तरल अंधेरे में डुबोकर सुखा रखें हों जैसे।'

बच्चे पुरानी चीजों की जगह नई चीजें लाकर रखने को ललकते। 'पापा, जुनेजा अंकल के यहाँ जैसा टी०वी० स्टैंड हैं, आप भी वैसा ही खरीदो। दैट इज वेरी क्यूट। ... और पापा, टेबल भी नई लेनी हैं। ये वाली टेबलें अब कितनी गंदी

दिखने लगी हैं।' पत्नी कुछ नए ढंग की पेंटिंगें खरीद कर लाई तो फ्लैट की दीवारें मुस्कराने लगीं।

हम लोगों के विचारों के दायरे, कोण, केन्द्र और बिन्दु सब उलट-पुलट हो गए थे। मैं 'लोन' के बारे में सोचता, उसके बोझ और हाथ तंग होने के बारे में सोचता। ज़ेब हल्की तो मन भारी रहता। बच्चे नई-नई चीज़ों के बारे में सोचते। पत्नी सस्ते में घर की सजावट करने और हर कीमत पर घर की उजलाहट को बनाए रखने के बारे में चिन्तित रहती। अब हम चारों माँ के बारे में नहीं सोचते थे, न ही यह सोचते थे कि माँ आखिर हर वक़्त किस बारे में क्या सोचती रहती हैं।

'रामायण', 'महाभारत', 'जय वीर हनुमान', 'कृष्णा' जैसे सीरियलों के कुछ वीडियो कैसेट्स हमारे पास थे। पत्नी माँ के लिए वी०सी०पी० लगा देती और माँ उन धारावाहिकों में उलझ जाती। पर कैसेटों के बीच-बीच में विज्ञापन भी 'टेप' हो रखे थे। माँ विज्ञापनों से आहत होती। बच्चे उल्लसित होकर विज्ञापनों की नकल करते और उन चीज़ों को हासिल करने की ललक दिखाते, जो विज्ञापनों में होतीं।

पेन्ट, फर्नीचर आदि के विज्ञापनों पर पत्नी की प्रतिक्रिया होती—'कितनी सुंदर दीवारें है, राजा के महल जैसी, सपनों जैसी। हमारी इन दीवारों से भी बहुत ज़्यादा सुंदर। ... घर में ऐसा फर्नीचर होना चाहिए—फाइव स्टार होटल जैसा दिखता है!'

नए फ्लैट में 'शिफ्ट' किए हमें सवा-डेढ़ महीना बीत चुका था। एक रविवार को हम लोग देर से उठे। मेरी पत्नी जब सुबह की चाय देने माँ के स्टोर-नुमा कमरे में गई तो घबरा गई—पिताजी वाली मुद्रा! माँ अपने पलंग के खड़े, नक्काशीदार सिरहाने पर माथा टेके बैठी थीं। उन्हें देखकर पत्नी उल्टे, दबे पाँव वापस आकर घबराई-सी मुझसे बोली—'देखना जी, मम्मी जी ठीक हैं क्या?'

मैं अख़बार पटककर फटाफट भागा गया।

—'माँ!'—मेरी आवाज़ सुनकर माँ ने फटाफट माथा उठाया, चेहरा घुमाया और बोली—'हाँ'....

—'ऐसे क्यों बैठी थीं? कोई तकलीफ़ है?'—मैंने पूछा।

—'नहीं, तकलीफ़ क्या? पूजा कर रही थी।'—उन्होंने कहा।

—'पूजा? ऐसे?—मैंने सवाल किया।

—'हाँ, पूजा वाला कमरा तो इस नए घर में है ही नहीं। न आले, न ताख़। न दीवारों पर देवी-देवताओं की तस्वीरें। न आँगन, न तुलसी। उस घर में तो हर कमरे में तस्वीर-कैलेंडर टँगे हुए थे, किसी भी तरफ़ हाथ जोड़ लेती थी। अब यहाँ...' —वे चुप हो गईं।

माँ के 'अजनबीपन' को दूर करने के लिए शनि बाज़ार से मेरी पत्नी लकड़ी का गणेश खरीद कर लाई, पर उसका मन नहीं हुआ कि इतनी सुंदर दीवारों को कील ठोंक-ठोंक कर बदसूरत बना दे।

मैंने समझाने की कोशिश की—'यह नया भी धीरे-धीरे पुराना ज़रूर होगा। यह उजलापन हमेशा थोड़े ही रहेगा! कीलें ठोंक लो, उन पर शो पीस टँग जाएँगे, सूनापन कम होगा, दीवारें अच्छी लगेंगी।' गणेश की लकड़ी की मूर्ति के लिए जरा बड़ी और मोटी कील ठोंके जाने की ज़रूरत थी। माँ के कमरे में जब कील ठोंकी जाने लगी तो कई जगह से पलस्तर उखड़ आया। अंततः एक जगह कील टिक गई और लकड़ी का गणेश उस पर टाँग दिया गया।

हमने तय किया कि माँ के लिए लकड़ी का एक छोटा-सा मंदिर खरीद कर उसे उनके कमरे के एक कोने में ठुँकवा देंगे। मंदिर ज़रा महँगा था, महीने के आखिरी हफ़्ते में खरीदना कुछ मुश्किल था। मैंने पत्नी से कहा कि इस बीच बक्से में रखी शिवजी, पार्वती, गणेश, हनुमान, राधाकृष्ण की मूर्तियाँ निकाल लो। पिताजी की फोटो भी निकाल लो। यह पुराना स्टूल माँ के कमरे में रखकर इस पर वे सारी मूर्तियाँ रख देना, पिताजी की फोटो भी।

पर पत्नी को पुराने घर से लाए गए बन्द बक्सों को खोलने की फुर्सत नहीं मिली। इसी बीच माँ को बुखार हो गया, उल्टी-दस्त हो गए। हमारा काफ़ी सारा सामान अभी तक बक्सों में बंद पड़ा है, मूर्तियाँ-कैलेंडर भी उन्हीं में बंद पड़े हैं। पिताजी की वह फोटो भी किसी बंद बक्से में ही है, जिसपर फूलमाला लटकती रहती थी। हम बक्सों को खोलना स्थगित करते चले गए, माँ दुर्बल होती चली गईं।

नई जगह का पानी शायद माँ को माफ़िक नहीं आया। पानी क्या, हवा भी शायद माफ़िक नहीं आई। कुछ भी माफ़िक नहीं आया। कभी-कभी वे कुछ-कुछ बड़बड़ाने लगीं—'बहू, मैं बाहर चबूतरे पर बैठी हूँ। ज़रूरत हो तो आवाज़ दे लेना। .... बहू, दूध गर्म करके रख देना, वे पूजा से उठने ही वाले हैं। .... बहू, आज ये चुन्नू इतना क्यों रो रहा है, इसको दूध पिला। शाम को याद रखना, इसकी नज़र

उतारनी है।... कोई ख़रीदार ही नहीं है तो मैं अपना मकान कैसे बेचूँ, बेटा?... सब कुछ तुम्हारा ही है, मैं कौन-सा साथ लेकर जाऊँगी।' माँ अपनी दुनिया में थी, हम अपनी में। एक घर में दो पीढ़ियाँ थीं, एक परिवार में जैसे दो परिवार थे!

इस फ्लैट में सब नया नया और अलग था। नए के जोश में हम पुराने को भूलते जा रहे थे। बच्चे तो शायद पुराने को पूरी तरह भूल ही गए थे। वे नए घरों में नए पड़ोसियों के यहाँ नए नए दोस्तों के साथ खेलने निकल जाते थे। मुझे कर्ज़ उतारने की चिंता ज़्यादा रहती थी, माँ की कम। पत्नी इस नए फ्लैट के नएपन को बचाए-बनाए रखने की जीतोड़ कोशिश में लगी रहती थी।

दोपहर को ज़रा-सी दही-खिचड़ी खाने के तुरंत बाद, 'वॉश बेसिन' तक पहुँचने से पहले ही माँ की तेज उल्टी फव्वारे की तरह दीवार पर जा लगी और सूखने के बावजूद वहीं रची रह गई। स्कूल से आते ही बच्चों का ध्यान सीधा दीवार पर पड़े उन लुढ़कते-हुए-से धब्बों पर गया। दीवार का उजलापन इस तरह आहत होने पर वे बहुत आहत हुए। वे दादी की तबीयत के बारे में पूछना भी भूल गए।

उस दोपहर के बाद माँ ने कुछ भी नहीं खाया-पिया। और तीन-चार दिन के बाद एक दिन माँ छू मंतर हो गईं। मैं और भाई साहब उनके अवशेष हरिद्वार जाकर गंगाजी में प्रवाहित कर आए। काँपती सतह पर कुछ देर राख हिलती रही, फिर धीरे-धीरे अन्तर्धान होती हुई तल में समा गई। सतह फिर से पहले जैसी उजली दिखने लगी।

अब तो लगता है कि माँ इस नए घर में कभी आई हीं नहीं। इस घर में उनकी उपस्थिति को मुझे सायास याद करना पड़ता है। क्या वे सचमुच इस नए फ्लैट में कभी आईं या रही थीं? या हम उन्हें वहीं पुराने मकान में भूल आए थे? या वे जान बूझकर अपनी मर्ज़ी से वहीं छूट गई थीं—उसी पुराने घर में, पूजा करती हुई.....

❑❑

कविताएँ

राकेश पाण्डेय

मॉरीशस से स्मृति चिह्न

मेरे एक मित्र ने कहा–
मॉरीशस से आया है
कुछ बोतल वोतल लाया है ?

मैंने कहा, जो लाया हूँ
वह बोतल में आ नहीं सकता
किसी उपहार के आवरण में समा नहीं सकता

उसने उत्सुकता से पूछा–
ऐसा क्या लाया है ?

मैंने कहा जो लाया हूं
उसकी मंदिर में पूजा
मस्जिद में इबादत
और
गिरजाघर में प्रार्थना हो सकती है

उसने फिर कहा–
ऐसा क्या है ?

मैं उन गन्ने के खेतों में
ढेर लगे पत्थरों* से
एक पत्थर चुराकर लाया हूँ
जो
वहां के इतिहास का
गौरव हैं
और
वर्तमान के साक्षी!

❑ ❑

---

* भारतीय (गिरमिटिया) मज़दूरों ने इन्हीं पत्थरों को खोद-खोदकर खेतों को उपजाऊ बनाया था। उनके श्रम के सम्मान व स्मृति में इन्हें खेतों में ढेर लगाकर सुरक्षित रखा गया है।

सिद्धेश्वर

दो खेमों के बीच

दो खेमों के बीच
जिंदा रहने का मोह
'पहला' का समर्थन करने पर
सिर फोड़ने को तैयार है 'दूसरा'!!
'दूसरे' का समर्थन करने पर
सिर फोड़ने को तैयार है 'पहला'!!

किसी भी हालत में
फोड़वाना ही है अपना सिर
तो क्यों 'शहीद' हो जाऊँ
दोनों स्वार्थी, अहंकारी, आतंकवादी खेमों के बीच?

लड़ूंगा, मरूँगा लेकिन
अपने नैतिक विचारों, आदर्शों
और नैतिकता के साथ!!!

दूरियाँ

घर से कोसों दूर
अपने घर का आंगन तलाशता वह
खुले मैदान में दौड़ लगाता है ....!

अपनी छत नहीं मिलती उसे
मिलता है सारा आकाश
जिसे पाकर भी
नहीं मिटती उसकी प्यास!!
बाजार में रेस्तरां में
चाट की दुकानों पर
रंग-बिरंगी लड़कियों से
आँखें चार होती हैं
हसीन जोड़ियों को देख
पत्नी की याद
ताजा हो जाती है।
मगर उसकी हाथ की पहुंच से
कोसों दूर होता है चाँद!!
चाँद की शीतल किरणें
क्यों बरसा रही है आग?
क्यों उसके तन को
झुलसा रही है
अपने आवेग में बह रही
शीतल-मदमस्त हवा......?
मन बेचैन
रुह अशांत
दिल परेशान
भटक रहा है
जिस्म बेजान.......
मरुभूमि में तलाश रहा है
कंठ भिगोने भर पानी
अंजूरी भर अन्न-दाना....!!
स्कूल से आ रहे बच्चे
लग रहे हैं कितने अच्छे.......

चाहता है वह उठाकर उन्हें
बिठा ले अपने कंधे पर
गालों पर देकर प्यार की थपकी
टॉफियों से भर दे उनकी जेब.....!!
मगर—
स्तब्ध खड़ा रह जाता है वह
खुली आँखों से देख रहा होता है
दूर-बहुत दूर
हरी भरी घासों के ऊपर
कुलाचें मार रहे हिरणों को....!!
सब कुछ है
उसके कितने करीब!
सब कुछ है
उससे कितनी दूर.....!!
सब कुछ है एक सपना
जिस दिन
सिमट आएंगी ये दूरियां
यही सब कुछ लगेगा उसको अपना!!!

❑ ❑

किस तरह

फिर से तिनकों का घर बनायें किस तरह ?
उजड़ी हुई ज़िन्दगी को आजमायें किस तरह ?

पानी में ढह गया है एक रेत का महल यार,
आकाश में भी पेड़ हम उगायें किस तरह ?

खामोश निगाहों ने कत्ल है किया मेरा,
ख़त उनके नाम आज हम भिजवायें किस तरह ?

चेहरे पे झलकते हैं कई जख़्म के निशान,
टूटे हुए आइने से दिल लगायें किस तरह ?

फ़रियाद मेरी अनसुनी रही है या ख़ुदा,
मस्जिद में बेपनाह होके जायें किस तरह ?

लूटी है अभावों से आबरू भी सरे राह,
झुठला के भूख-प्यास मुस्कुरायें किस तरह ?

❑❑

अतुल कुमार मिश्र 'अतुल'

जिन्दगी का नया फलसफा

धुआँ, गर्द और गुबार
हर तरफ
जख्मी आशाएँ
कराहती उम्मीदों
का लगा था अम्बार
हर तरफ
कुछ भोगे हुए अनुभव,
कुछ तरोताजा स्नेहिल स्पर्श,
कुछ भविष्य की सुखद कल्पनाएँ
खील-खील हो कर
बिखर गई थीं
हर तरफ
गूँज रहा था
विस्फोट का संगीत
इस मंज़र को जिसने गढ़ा था
वह
जख्मी अहं के नशे को
बीयर की तरह पी
बारूदों में भुने
जीत के लोथड़े चबा

जश्न के रौ में खड़ा था
और
तब वहाँ
मैंने
जिन्दगी का नया
फलसफा पढ़ा था।

❑ ❑

जे.पी. आर्य

जहरीला आदमी

दो हाथ पैर वाला यह सुन्दर इंसान
बहुत जहरीला है।
जब वह प्रेम से विनम्र होकर बोलता है,
तो इसके उपदेश से हृदय द्रवित होकर डोलता है।
प्रतीत होता है,
इसने अपने जीवन में गीता को अपनाया है,
उपनिषदों का वचन इसके जीवन में समाया है,
भगवान का स्वरूप इसने जन जन में पाया है।
परंतु,
इसके उपदेश से,
कितने लोग दुःख-सागर में फंस गए हैं,
कितने इसके वाक्-पंक में धंस गए हैं,
और कितने विशाल शिलाखंड टस से मस गए हैं।
क्योंकि
यह मनुज देखने में सलोना है,
विधाता का सुन्दर खिलौना है।
पर,
जब यह सामने बोलता है तब मीठा बोलता है,
और जब पीछे बोलता है तो तीता बोलता है,
हे भाई, इसका यह रूप बहुत करीला है।
सावधान जगदीश इंसान बहुत जहरीला है।।

❑ ❑

डॉ० ओमप्रकाश सिंह

गीत नहीं लिख पाया

मैं वह गीत नहीं लिख पाया
जिसके बाद न कुछ लिखना हो।

भीतर भीतर
दहक रहा जो
उसकी आंच न चुप रह पाती
संवेदना
थिरक कर मन पर
नया चित्र अंकित कर जाती,
शब्दों के संबोधन पंक्षी
इन्द्रधनुष के रंग उड़ाते
पर वह रूप नहीं रच पाया
जिसके बाद न कुछ रचना हो।

सृष्टि
धुएं-सी चंचल नगरी
छाया से छाया की दूरी
यायावरी
जिंदगी अपनी
प्यास नदी-सी रही अधूरी

उतने अन्दर बिम्ब हुए हम
जितने बाहर पांव पसारे
वह आकाश नहीं खुल पाया
जिसके बाद न कुछ खुलना हो।

❑❑

व्यूह में लड़ना

व्यूह से बाहर करोगे क्या
हो सके तो व्यूह में लड़ना।
हर मुहाने पर
खुले हैं मोरचे
धूर्तों के हाथ में अंगार हैं
फूँकते हैं अब हमारी बस्तियां
लोग जिनमें आज भी
बीमार हैं,
घाव को रोक करोगे क्या
अब जरूरी है इसे भरना।

चाहते हो तोड़ना
यदि व्यूह को
चोट करना भीतरी दीवार पर
भूल बैठी है अंधेरे में कहीं
धर रही ज्वालामुखी
आधार पर,
मुकुट ही लेकर करोगे क्या
जब नियति है आग पर चलना।

जिंदगी संघर्ष करने को
यदि खड़ी संकल्प लेकर और
इसे छलने से
बचाना तुम
जो धरे खुशहालियों का
मौर
शंख ध्वनि सुनकर करोगे क्या
चक्र उंगली पर धरे रहना।

❑ ❑

डॉ० गोविन्द व्यास

दो पल

बस्ती-बस्ती आग लगी है, आओ जंगल ढूँढ़ें हम,
जिस दलदल में सिर्फ कमल हों, ऐसी दलदल ढूँढ़ें हम।

पागल नदिया, घायल झरने इतने व्याकुल कभी न थे,
चलो चीखती घाटी में चल, इनकी कलकल ढूँढ़ें हम।

बहुत किए अहसान आपने, एक ज़रा सा और सही,
जिन लम्हों में हम न मरे हों, ऐसे दो पल ढूँढ़ें हम।

जूझे, लड़े, थके और टूटे, अब वे जान गए होंगे,
उनका अमृत नहीं मिलेगा, चलो हलाहल ढूँढ़ें हम।

भोगा स्वर्ग, नरक भी भोगा, फिर भी रहा अधूरापन,
चलो पुराना, बचपन वाला, माँ का आँचल ढूँढ़ें हम।

❑❑

अमरनाथ 'अमर'

नई यात्रा

ये सच है
चारो तरफ अँधेरा है
भावनाएँ
लहूलुहान होकर
औंधी पड़ी हैं
आकाश की उँचाइयाँ
क्षितिज के उस पार
मुँह के बल
गिर पड़ी हैं
सपने टूट कर
बिखर गए हैं
आकांक्षाएँ
अपने में सिमट कर
सिकुड़ गई हैं
रक्त के रेशे-रेशे में
हताशा और निराशा है
ख़बरों में
मौत का सन्नाटा है!
यह सब सच है
लेकिन
इतना बड़ा सच नहीं

जितना बड़ा जीवन
और
उसकी सम्भावनाएँ!
तुम आओ
मेरे पास, मेरे साथ
मिलकर
मिट्टी को गूँथें
दीया बनाएँ
स्नेह की बाती लगाएँ
और
अरमानों के घी से
दीया जलाएँ!
फिर जो रोशनी होगी
उसे प्यार का नाम देंगे!
उसे हथेली पर
लेकर चलेंगे, दौड़ेंगें
और धरती से
आकाश की ऊँचाई को
किरणों से नाप देंगे!
औंधे पड़े क्षितिज को
ताड़ के पेड़-सा
तान देंगे!
इस सूने जीवन में
कोयल की कूक
भौंरो के गान
झरनों का संगीत
फूलों की मुस्कान
और वीणा के
झंकृत तारों से

मधुरिम तान देंगे!
तार-तार खण्डित हुए
सपनों में
रंग भरेंगे
कुछ-कुछ हरा
कुछ-कुछ लाल
कुछ-कुछ गुलाबी
कुछ-कुछ पीला
कुछ-कुछ इन्द्रधनुष सा
और बहुत कुछ
प्यार के रंग-सा!
आकांक्षाओं के पौधे
जो सूख गए थे
उनकी जड़ों में
सम्भावनाओं से लदी
अमृत बूँदों की
वर्षा करेंगे!
हरियाली को खींच लाएँगे
प्रकृति की गोद से!
नई कोपलें उगाएँगें
पराग को निखारेंगे
कलियों को खिलाएँगे
और
यहाँ से वहाँ तक
रंगत बिखेर कर
खुशबू फैलाएँगे!
कौन कहता है कि
हम तन्हा हैं
ये सूरज-चाँद-तारे

पर्वत-नदियाँ-घाटियाँ
सबके सब
अपने ही तो हैं!
तो आओ
आज सबको
अपने साथ, अपने करीब
रमाकर
एक नई यात्रा
शुरु करें
तुम!
हम!
हम तुम!!

❑ ❑

अजय कुमार

भावना

हृदय के
मंदिर में
'उसे'
अपने भाव रूपी
पुष्पों से पूजता हूँ।
जिसकी सुन्दर छवि ही—मूरत है
जिसकी वाणी ही – 'ओंकार' ध्वनि है
जिसका हर शब्द ही – नाद है
जिसका नाम ही – जप है
जिसका स्मरण ही – ध्यान है

जिसकी याद में तड़फ ही – तप है
जिसका वियोग ही – साधना है
जिसकी निकटता ही – उपासना है
जिसकी कामना-मूर्ति ही – आराधना है
उसको!
मेरी हर धड़कन
समर्पित है।

❑ ❑

आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री

बाँसुरी

किसने बाँसुरी बजाई?
जनम-जनम की पहचानी वह तान कहाँ से आई?
अङ्ग-अङ्ग, फूले कदम्ब-सम साँस-झकोरे झूले
सूखी आँखों में यमुना की लोल लहर लहराई
(किसने) बाँसुरी बजाई?

जटिल कर्म-पथ पर थर-थर-थर काँप लगे सकते पग
कूक सुना सोए-सोए-से हिय में हूक जगाई
(किसने) बाँसुरी बजाई?

मसक-मसक रहता मर्म-स्थल, मर्मर करते प्राण
कैसे इतनी कठिन रागिनी कोमल सुर से गाई
(किसने) बाँसुरी बजाई?

उतर गगन से एक बार फिर पीकर विष का प्याला
निर्मोही मोहन से सटी मीरा मृदु मुसकाई
(किसने) बाँसुरी बजाई?

❑ ❑

तो जानूं

तीखे कांटों को, फूलों का
शृंगार बना दो तो जानूं

वीरान जिन्दगी की खातिर
कोई न कभी मरता होगा,
तपती सांसों के लिए नहीं
यौवन-मरु तप करता होगा
फैली-फैली यह रेत
जिन्दगी है या निर्जल उज्ज्वलता ?
निर्जल उज्ज्वलता को जलधर
जल धार बना दो तो जानूं

मैं छाँह-छाँह चलता आया—
अकलुष प्रकाश की आशा में
गुमसुम-गुमसुम जलता आया
उजलूं तो लौ की भाषा में
औंधा आकाश टंगा सर पर
डाला पड़ाव सन्नाटे ने
ठहरे गहरे सन्नाटे को
झंकार बना दो तो जानूं

गिर पड़ी अचानक धरती पर
थी नील झील में तैर रही
पहचान हवा का रुख न सकी
अम्बर में थी कर सैर रही
आते-जाते सूरज सब दिन
सन्ध्या प्रभात को सुलगाता
तुम एक सिसकती शबनम को
अंगार बना दो तो जानूं।।

❑ ❑

संगीत को चित्रों और मूर्तियों में उभारा

गीतिका गोयल

गीतिका गोयल कला की दुनिया में एक उभरता हुआ नाम है। हाल ही में उनकी चित्रों एवं मूर्तियों की एक प्रदर्शनी अहमदाबाद की कॉन्टेम्परेरी आर्ट गैलरी में आयोजित की गई। यह उनकी दूसरी एकल प्रदर्शनी थी। प्रसिद्ध कलाकार श्री गजेन्द्र शाह द्वारा संचालित तूलिका आर्ट ग्रुप के तत्त्वावधान में आयोजित यह प्रदर्शनी बेहद सफल रही। अहमदाबाद के लगभग सभी उच्च कलाकारों ने प्रदर्शनी में आकर गीतिका की कार्यशैली की सराहना की और उन्हें निरंतर आगे बढ़ते रहने को प्रेरित किया। उसी समय गीतिका द्वारा लिखित पुस्तक 'नाना-नानी की कहानियाँ' का विमोचन गुजरात साहित्य परिषद् के अध्यक्ष श्री रघुवीर चौधरी जी ने किया। चित्र-प्रदर्शनी का उद्घाटन श्री गजेंद्र भाई द्वारा किया गया। इस पूरे प्रदर्शन का विषय था संगीत। सभी कलाकृतियाँ एवं मूर्तियाँ संगीत और उसके वाद्य-यंत्रों को प्रदर्शित करती थीं। संगीत-प्रेमियों ने इस प्रयास को खूब सराहा।

गीतिका की कला-यात्रा यूँ तो बालपन में ही शुरू हो गई थी, जब उसने 4-5 वर्ष की आयु में झाड़ू की सींक पर रुई लगाकर और उसे रंग में डुबोकर चित्र बनाने शुरू किए। उसके बाद उसे बिजनौर, उत्तरप्रदेश के श्री कैलाश राघव जी से

मार्गदर्शन मिला, जिन्होंने मानव-मुद्राएँ और उनके सही अनुपात का ज्ञान उसे कराया। धीरे-धीरे पेंसिल पर उसकी पकड़ मजबूत होती गई। वह सीधे पैन से किसी भी चित्र की नकल मिनटों में तैयार कर देती थी। फिर उसने अपनी कल्पना से चित्र बनाने शुरू किए और तब उसकी इस अभिरुचि ने अपना क्षेत्र विस्तृत किया। पिछले 12 से ज़्यादा वर्षों से वह पुस्तकों के लिए चित्र बना रही है, यह पुस्तके डायमंड पाकेट बुक्स, दिल्ली एवं हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर द्वारा प्रकाशित की गई हैं।

अहमदाबाद में आयोजित इस प्रदर्शनी में गीतिका ने अपने त्रिआयामी चित्रों (3-dimensional Paintings) के साथ-साथ मूर्तिकला के क्षेत्र में एक नए माध्यम को प्रस्तुत किया। मिट्टी, प्लास्टर आफ पेरिस, ताँबा, पीतल, लोहा और पत्थर से दूर हटकर उन्होंने एक नए और सुलभ माध्यम का प्रयोग इन मूर्तियों में किया। इन सभी मूर्तियों को बनाने में मात्र कागज का प्रयोग किया गया है। अखबारी कागज और हस्तनिर्मित कागज से बनी ये मूर्तियाँ धातु जैसी ही दिखाई देती हैं। कागज़ का आभास तब होता है, जब उन्हें उठाया जाए। ये मूर्तियाँ प्लास्टर ऑफ पेरिस जैसी हल्की हैं लेकिन इन्हें सँभालना आसान है क्योंकि ये टूटती नहीं है और ठोस हैं।

इस नए माध्यम का मूर्तिकारों और कलाविदों द्वारा स्वागत किया गया है। गीतिका अपने चित्रों में भी इसी तरह की पेपर फिगर्स का प्रयोग करके उन्हें त्रिआयामी स्वरूप प्रदान करती है। कागज के इस नए प्रयोग ने निश्चित ही गीतिका के लिए नई संभावनाओं के द्वार खोल दिए हैं।

बिरमा

डॉ० मञ्जुलता शर्मा

दरवाजे की घण्टी बजते ही मुझे झुंझलाहट होने लगी। एक तो कॉलेज जाने में वैसे ही काफी देर हो रही थी, फिर सुबह-सुबह न जाने कौन आया होगा। दूसरी ओर पतिदेव का अपने ऑफिस जाने का वही पुराना घिसा पिटा रिकॉर्ड चल रहा था "देखो! ये तुम्हारी जैसी प्रोफेसरी नहीं है, सरकारी दफ्तर है, समय से पहुंचना पड़ता है। यदि खाना नहीं बना हो तो छोडो ऐसे ही ठीक है, दो ब्रैड और दूध लेकर ही चला जाऊँगा। नौकरी वाली पत्नी का सुख तो भोगना ही है। इन व्यंग्य बाणों से मन पहले से ही कड़वा था कि दूसरी ओर गेट पर कभी सेल्समैन कभी कॉलेज में एडमीशन कराने के लिये अवांछित रिश्तेदारों का वक्त बेवक्त आ जाना मन को और चिड़चिड़ा बना देता था। ऐसे समय में कोई ढंग का नौकर भी नहीं मिल पा रहा था जो पूरे घर को संभाल ले। दोनों बच्चे विदेश में रहने का मन बना चुके थे। घर के सन्नाटे को मेरा पालतू कुत्ता ही कभी-कभी तोड़ देता था। उम्र बढ़ने के साथ शरीर को बीमारियों ने घेरना शुरू कर दिया। काम में शीघ्रता करने पर पैरों में लड़खड़ाहट होती थी। कभी ब्लडप्रैशर बढ़ जाता था तो कभी रात को नींद नहीं आ पाती थी। सुबह की भाग दौड़ से शरीर थक कर चूर हो जाता था। झाड़ू पोंछे वाली बाई जल्दी से काम निबटा कर चल देती थी। आँख बचने पर किसी कमरे की झाड़ू तो किसी का पोंछा छोड़ देना उसके लिये मामूली बात थी।

इस बीच में मैंने अपने कई मिलने वालों से नौकर के लिये कहा था क्योंकि नव विकसित कॉलोनी में घर अकेला छोड़ना भी चोरों, उठाईगीरों को निमन्त्रण देना था। कॉलबैल फिर बजी। मैं आटे लगे हाथों से ही बाहर आयी, देखा सामने मेरा रिक्शे वाला एक छोटे लड़के के साथ खड़ा था। बोला, माताजी! यह हमारा भतीजा है, बिहार से आया है, आप इसको रख लो। लड़का बड़ी-बड़ी पीली आँखों से हम दोनों के चेहरे देख रहा था। लगता था जैसे वो हमारे भावों को शब्दों का आकार दे रहा है। मैले कुचैले कपड़े पहने उस लड़के के बालों में से गन्दगी साफ झलक रही थी, आँखें कीचड़ से भरी थीं। मैंने उस काले कलूटे मरियल से लड़के से पूछा, तेरा क्या नाम है? उसने अपने चाचा की ओर देखते हुये अपने पीले-पीले दाँत निकाल दिये। उसका चाचा बोला यह हिन्दी नहीं जानता है। वैसे इसका नाम ब्रह्मदेव है, आज ही गाँव से आया है। मेरा मन वितृष्णा से भर उठा। इतने गन्दे घिनौने लड़के को कैसे रख पाउंगी। फिर पता नहीं हिन्दी सिखाने में कितना समय लगे। परन्तु घर की चौकीदारी, कुत्ते की तीमारदारी और बाजार के छोटे-छोटे कार्यों की विवशता ने मुझे उसकी गन्दगी को अनदेखा करने को बाध्य कर दिया। मैंने कहा ठीक है, कल से नहाकर काम पर आना और साफ कपड़े पहनना। बाद में मन को समझाया। मुझे कौन-सा उससे खाना बनवाना है। सफाई और चौकीदारी का काम है, बैठा रहेगा। इसके अलावा जब कोई और ठीक लड़का मिल जायेगा तब इसे निकाल दूंगी। अभी इसे रखने में हर्ज ही क्या है? दूसरे दिन सुबह साढ़े सात बजे वो लड़का फटी बनियान और एक गमछा लपेटे गीले बालों से मेरे घर आ गया। मैंने चिल्लाकर कहा तेरे कपड़े कहाँ है? वो चुप रहा। मुझे अपनी झल्लाहट पर तरस आ गया, क्योंकि कल ही इसके चाचा ने बताया था कि यह हिन्दी नहीं जानता है। मैंने इशारे से उसके कपड़ों के बारे में पूछा। तब वह अपनी भाषा में बोला, कि उसने रात को अपने सारे कपड़े धो दिये हैं और सुबह वो गीले थे। यद्यपि मैं भी उसकी भाषा नहीं समझ रही थी परन्तु भावों एवं संकेतों का आदान प्रदान ही हमारी वार्ता का सेतु था। मैंने उसे झाड़न का कपड़ा हाथ में देकर समझाया कि सारे सोफे, खिड़की, दरवाजे, मेज, कुर्सी, फर्नीचर आदि रोज झाड़ना हैं और जब तक मैं लौटकर न आ जाऊँ तुम्हें यही रहना है। वह मेरी कितनी बात समझ सका यह तो नहीं जानती परन्तु बिना बोले काम करता रहा। जब कॉलेज से लौटी तो देखा कि वह दरवाजे पर बिछी कुर्सी पर ऊँघ रहा था। मुझे देखकर

आँखें रगड़ते हुए खड़ा हो गया। मैंने उसे घर जाने का इशारा कर दिया। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में मुक्त हो जाने की खुशी छलक उठी। वह अपने चाचा के पास चल दिया। उसके इतने बड़े नाम को लेना मेरे लिये सम्भव नहीं था इसलिये मैंने अपनी सुविधा के लिये उसका नाम ब्रह्मा रख लिया। बाद में मुझे पता चला कि उसके गाँव में सब उसे बिरमा ही पुकारते है। सम्भवतः यह ब्रह्मा का ही अपभ्रंश रहा होगा।

धीरे-धीरे ब्रह्मा हमारे घर का एक सदस्य बन गया। मेरा कुत्ता जो पहले उस पर अनवरत भौंका करता था अब उसके आने पर पूंछ हिलाकर कूं कूं करके उसका स्वागत करता था। उसके न आने पर काम में बहुत असुविधा होती। पतिदेव के जूतों की पॉलिश से लेकर, स्कूटर साफ करने की जिम्मदारी तक ब्रह्मा की थी। वह घर में घुसते ही एक निश्चित क्रम से काम शुरू कर देता था। अब वह कुछ हिन्दी के शब्द भी समझने लगा था। मैंने उसे कई जोड़ी कपड़े लाकर दिये, साबुन देकर रोज नहाने का आदेश दिया। कुछ दिन बाद मैंने देखा कि वह पैंट की जेब में एक कंघी रखने लगा था और हमारी आँखें बचाकर वाशवेसिन साफ करते समय प्रायः खुद को निहारा करता था। एक दिन मैंने पूछा ब्रह्मा! तुझे अपनी माँ की याद नहीं आती, उसने स्वीकृति की मुद्रा में सिर हिलाया। मैंने कहा तो फिर गाँव क्यों नहीं चला जाता, तो टूटे-फूटे शब्दों में बोला कि "फिर खायेगा क्या? उसका यह चिरन्तन सत्य मुझे बौना बना गया।

तीन चार वर्ष कब बीत गये पता ही नहीं चला। इस बीच में ब्रह्मा केवल एक बार अपनी माँ से मिलने गाँव गया। जाते समय मेरे और मेरे पतिदेव के पैर छूने आया। पता नहीं क्यों मेरी आँखें भर आयीं। छोटे पुत्र को जब एयरपोर्ट छोड़कर लौटी थी तब भी मन इतना ही भारी था। मैंने ब्रह्मा की माँ के लिये साड़ी, ब्लाउज, एक स्टील का बड़ा कटोरा, थाली और ब्रह्मा के लिये दो जोड़ी नये कपड़े दिये। उसकी पगार के अतिरिक्त एक सौ एक रु० नगद दीपावली के इनाम के दिये। जाते-जाते ब्रह्मा बोला कि "एक महीना बाद आयेगा।" मैं काम करते हुए एक अभाव महसूस करती रही। प्रायः नियत समय पर अनायास ब्रह्मा को आवाज देने लगती। फिर इस मतिभ्रम पर स्वयं ही लज्जित हो जाती। ब्रह्मा एक महीने के स्थान पर पन्द्रह दिन में ही लौट आया। आकर फिर पैर छुए। मेरा मन पुलक उठा। मैंने हँस कर पूछा, क्यों रे! बड़ी जल्दी लौट आया। वो आँख नीची करके बोला "गाँव

में अच्छा नहीं लगा, बापू खेत में काम करने को बोलता है। अब मैं नहीं जायेगा" मुझे लगने लगा कि शहरी सुविधाओं का तिलिस्म आदमी को कैसे बाँधने लगता है। जिसमें रक्त सम्बन्धों की उष्णता भी समाप्त हो जाती है।

इसके बाद ब्रह्मा गाँव नहीं गया। कभी कभी उसकी चिठ्ठी आती तो वह उसे अपने जागदो भैया से पढ़वाने और प्रत्युत्तर में चिठ्ठी लिखवाने के लिये मुझसे छुट्टी लेकर चला जाता। हाँ चिठ्ठी के लिये कागज और पैन वो प्रायः मुझसे ही मांगा करता था। एक दिन अचानक रात को आठ बजे आया। मैंने पूछा क्या बात है? वो चुप खड़ा रहा। मैंने डाँट कर पूछा—बोलता क्यों नहीं? तब धीरे से बोला "माँ का तबियत खराब है, बोतल चढ़ेगा। गाँव से एक आदमी आया है सात सौ रुपया दे दो"। मैंने कहा क्या पागल है? अभी तो दो महीने के एडवांस रुपये तुझे दिये थे। वो कहाँ गये अब मेरे पास नहीं हैं। वो फिर भी खड़ा रहा। मैंने कुछ सहज होते हुए कहा अच्छा सौ, दो सौ रुपये चाहिये तो ले जा। वो बोला नहीं सौ, दो सौ से क्या होगा पूरा सात सौ रुपया चाहिये। मुझे झुंझलाहट होने लगी। मैंने कहा इतने रुपये कैसे दे दूं तुझे? बोला—आंटी मैं "कोई भाग कर थोड़े जा रहा हूँ मेरी पगार से काट लेना"। मेरा क्रोध बढ़ने लगा। चार साल पहले जिसे मैंने बोलना सिखाया था आज वह मुझसे वाद-विवाद करने में भी नहीं झिझक रहा। मैंने आखिरी अस्त्र छोड़ते हुए कहा कि अगर मैं न दूँ तो? वो बोला "तो कल हम गाँव चला जायेगा"। मुझे लगा मेरे ब्रह्मास्त्र की काट भी उसके पास मौजूद है। मैं और मेरे पतिदेव एक दूसरे का मुँह देखने लगे। आखिर में मेरे पतिदेव ने पाँच सौ रुपये देकर उसे वापिस भेजा। मैं बहुत तिरस्कृत और अपमानित महसूस कर रही थी। बाद में मैंने चिढ़कर पतिदेव से कहा कि यदि वह वास्तव में गाँव चला गया और वापिस नहीं आया तो जो एक हजार रुपये उसने एडवांस लिये हैं, कौन देगा। पतिदेव बोले भई! अब और कोई विकल्प भी तो नहीं था। खैर यह हमारा भाग्य है। मुझे पूरा विश्वास हो गया कि यह उसकी एक चाल है और अब वह सुबह नहीं आयेगा। लेकिन सुबह ब्रह्मा फिर हाजिर था। उसके चेहरे पर रात की बात के कोई चिन्ह नहीं थे। रोज की तरह वह अपने कार्य में लग गया।

हाँ! कुछ दिनों से ब्रह्मा के व्यवहार में अन्तर आने लगा था। मुझे लगा कि वह किशोरावस्था में प्रवेश कर रहा है। मेले-तमाशें के लिये मैं उसे दस-बीस रुपये खाने को देती तो वह उसकी एक कान की बाली, स्टील का ब्रेसलेट अथवा गले

के लिये पीतल की चेन खरीद लाता। पैंट की जगह गहरे नीले रंग की जीन्स और गुलाबी, पीली, नीली टी शर्ट खरीदने लगा। मैंने दीपावली पर उसे कपड़ों के लिये रुपये दिये तो वह सफेद जीन्स और रॉयलब्लू टीशर्ट ले आया। मैंने कहा यह जीन्स तो बहुत जल्दी गन्दी हो जायेगी, गहरे रंग की लाता। वो हँस कर बोला "मुझ पर सफेद अच्छा लगता है"। तब मुझे लगा कि शायद अब इसमें अच्छे बुरे को जानने की समझ भी विकसित हो रही है। ब्रह्मा का काला आबनूसी रंग धीरे-धीरे निखर रहा था। मेरे पास पड़ी पुरानी क्रीम, पाउडर, कंघी, शीशा, चश्मा, घड़ी सब ब्रह्मा के 'ड्रेसिंग आले' की शोभा बनने लगे। हाँ! इतना सब होने पर भी वह ईमानदार इतना था कि मेरा पर्स, घड़ी, चेन, अंगूठी, रुपये प्रायः मेज पर ही पड़े रहते थे परन्तु उसने उन्हें कभी नहीं छुआ।

एक वर्ष से ब्रह्मा कुछ अधिक ही चुस्त और फुर्तीला दिखाई देने लगा था। रात को वह अपने चाचा के पास सोता था इसलिये मुझे उसकी गतिविधियों की पूरी जानकारी नहीं हो पाती थी। परन्तु उसके संगी साथियों ने एक दिन मुझे बताया कि ब्रह्मा तम्बाकू गुटखा खाने के साथ-साथ रात की फिल्में देखने भी जाता है। मैंने इस बात के लिये उसे खूब डाँटा। लेकिन वह हमेशा की तरह सिर नीचा करके चुपचाप सुनता रहा। एक दिन अचानक दोपहर में आया और बोला पचास रुपया दे दो। मैंने कहा क्या करेगा ? बोला 'भाभी को देगा'। मैंने कहा क्यों क्या तेरा भाई नहीं है ? बोला, वो अलग रहता है। मैंने भी चिढ़कर कहा कि तूने क्या अपने भाई की गृहस्थी चलाने का भी ठेका ले लिया है। बोला 'उसका छोटा-छोटा चार बच्चा लोग है, भूख से मर जायेगा'। मैंने उसे समझाया कि देख पचास रुपये में तो एक दिन का राशन आ पायेगा फिर वो लोग कल क्या खायेंगे ? बोला, पता नहीं। ब्रह्मा के इस उत्तर ने मानों उसे भारतीय मनीषियों के दर्शन से जोड़ दिया। जिसमें पर सेवा में भी अपरिग्रह का भाव निहित हैं। मैंने उसे पचास रुपये दे दिये और वह अत्यन्त प्रसन्न भाव से पर पीड़ा हरने का संकल्प लेकर चल दिया। उस दिन के बाद से ब्रह्मा प्रायः मेरे द्वारा दी गयी खाने की चीजें, चॉकलेट जेब में रख लेता था और रात को सम्भवतः उन बच्चों के चेहरे की मुस्कराहट का मूल्य चुकाया करता था। उसकी किशोरावस्था में, पता नहीं यह भाभी का आकर्षण था अथवा बच्चों से ममत्व का रिश्ता। बात कुछ भी रही हो यह प्रसंग उसके जीवन का एक महत्वपूर्ण अंश रहा।

इस बीच में ब्रह्मा अखबार, मैग्जीन भी देखने लगा था। उसे पढ़ते देखकर एक कुशल पाठक का आभास होता था। मेरे कॉलेज जाने पर वह पूरा अखबार लॉन में कुर्सी पर बैठकर देखता रहता। 'इण्डिया टुडे' के चिकने पृष्ठों पर मैंने कई बार उसे हाथ फेरते देखा। एक दिन मैंने उससे पूछा कि तू पढ़ना जानता है? बोला हाँ! अपना नाम लिख लेता हूँ। तब मुझे लगा कि वास्तव में ब्रह्मा बिना भाषायी ज्ञान वाली चित्रवीथियों में स्वयं को उतार कर उसका आस्वादन करता है। टी०वी० पर चलने वाले गाने और फिल्में ब्रह्मा के लिये सर्वाधिक आकर्षण का केन्द्र थीं। घर का काम पड़ा होने पर भी वह सीढ़ियों पर बैठकर कार्यक्रम देखने लगता था। जब मुझे उससे काम कराना होता तो मैं कोई धार्मिक चैनल लगा देती। प्रवचन शुरु होते ही वह अन्य कार्यों में व्यस्त हो जाता। परन्तु कभी भी उसने मुझसे अपनी रुचि के कार्यक्रम चलाने की मांग नहीं की। ब्रह्मा को सर्वाधिक आनन्द मेरी कार को साफ करने में आता। जब भी मैं उसका मन घरेलू काम से उचटता देखती तो कार की चाबी देकर उसे साफ करने का आदेश दे देती। कार में बैठकर वह राजगद्दी का सुख अनुभव करता था। शीशों को साफ करने के बाद वह स्टेयरिंग को धीमे-धीमे घुमाता रहता अपने साथियों के समक्ष वह स्वयं को उस समय उच्च पदासीन मानता। एक घण्टे बाद भी मैं उसे गाड़ी की सफाई में ही तल्लीन देखती। उसकी सीखने की शक्ति इतनी प्रबल थी कि वह एक ही बार में कार की डिक्की खोलना बन्द करना और उसके सतही कार्य सीख गया।

जब भी मैं कॉलेज जाने में विलम्ब करती तो पूछता "आज स्कूल जायेगा" मेरा मना करना मानो उसके लिये उत्सव हो जाता। सम्भवतः वो मुझसे बहुत डरता था। एक दिन मेरी पड़ोसिन ने उसे गुटखा खाते देख लिया। वो शीघ्र ही उनके आगे गिड़गिड़ाने लगा "आण्टी से मत कहना बहुत डांटेगी"। मैं जब भी कॉलेज से आकर पूछती कोई आया था? प्रायः उसका उत्तर नकारात्मक होता। परन्तु कभी-कभी कहता "एक आदमी आया था, चला गया"। उसे लिंग ज्ञान से कोई सरोकार नहीं था। वह तो सांख्य दर्शन के 'पुरुष' में ही सभी का अन्तर्भाव कर लेता था।

ब्रह्मा के चाचा ने एक दिन बताया कि ब्रह्मा की शादी बैशाख माह में तय हो गयी है। और तीन चार माह बाद उसे गाँव जाना है। मैंने कहा इतने छोटे बच्चे की शादी का क्या मतलब है? वह बोला माताजी! "हमारे यहाँ छोटा-छोटा बच्चा लोग की शादी बना देता हैं। इसकी शादी यदि अब्बी नहीं हुआ तो कब्बी नहीं होगा

क्योंकि अगर कोई बारह साल तक के लड़के की शादी नहीं बनाता तो वो आवारा हो जाता है।" मैंने ब्रह्मा से शादी के बारे में पूछा तो वह हँसकर रह गया। लेकिन उसकी मौन स्वीकृति देखकर मुझे लगा कि वह इस बात से खुश है। मैंने उसके सामने पत्नी सहित यहीं रहने का प्रस्ताव रखा तो बोला नहीं अब हम गाँव में ही रहेगा। माँ इधर नहीं भेजेगा। खेत कौन देखेगा। बैशाख का माह मेरे लिये सृष्टि के अन्त का सा संकेत देने लगा। फिर से एक नये ब्रह्मा की तलाश करनी होगी। उसे सिखाने होंगे शहरी तौर तरीके और भाषा के मौन संवाद। परन्तु आज भी पता नहीं कौन-सा विश्वास मुझसे यह वायदा करता है कि कॉलबैल बजेगी और द्वार पर गुलाबी साड़ी में सजी धजी एक काली स्त्री छाया के साथ खड़ा ब्रह्मा यही कहेगा "आण्टी जी मैं गाँव में चला तो गया पर लौट आया। उधर मन नहीं लगता।" एक शीतल सी बयार की यह अनुभूति बिरमा को सपत्नीक रूप में मेरे सामने जब तब खड़ा करती रहेगी।

❑ ❑

कविता में जीने की कला

कुमार पंकज

कविता लिखना मन की अभिव्यक्ति ही नहीं अंतरात्मा से निकली हुई आवाज है जिसमें कहीं पीड़ा तो कहीं कसक तो कही करूणा भरी होती है। निर्मला सिंह की रचनाओं को पढ़ते हुए ऐसा लगता है ये रचनाएं केवल रची ही नहीं गयी है, बल्कि कवयित्री ने इसे जिया भी है। यानि उसमें स्वयं को समाहित कर लिया है। "वक्त की खूंटी" कवयित्री का पहला संकलन है। शीर्षक कविता वक्त की खूंटी में कवयित्री ने लिखा है—

वक्त! कुछ पल के लिए
बन जाए एक खूंटी;
जिस पर मैं टांग सकूँ,
जिन्दगी के कांधे पर लटके
उम्र की झोली में से निकालकर
कुछ आँसू, कुछ आंहे, कुछ वेदना
और चिन्ताएं।

इस संग्रह की हर कविता अर्थपूर्ण और पठनीय है। कवयित्री के शब्दों में, "कवि के अन्तरस्थ से उच्चारित कविता एक मंत्र है। यह सृष्टि में मानव की सृजनात्मक कृति है। अखंड महायज्ञ की शाकल्प समिधा है कविता। कविता हृदय के अनेकार्थी उद्‌गार है, कविता मांग है अनुभूति, संपन्नता एवं संवेदन प्रबलता

की। मानव जीवन की कल्पना है, संजीवनी है। अखण्ड बहती आपगा है मनोभावों की जो कवि के हृदय से जन्म लेकर पाठक के हृदय तक पहुंचती है।" एक माँ अपने बेटे के दुःख को किस प्रकार से परिभाषित करती है इसकी वेदना इन पंक्तियों में स्पष्ट झलकती है–

माँ, तू कैसी अलगनी है
जिस पर टंगे हैं
अनगिनत दुःख
पढ़े लिखे जवान
बेरोजगार बेटे का दुःख।

इस संग्रह की अनेक रचनाएं ऐसी हैं जो मनुष्य को सत्य के काफी नजदीक ले जाती हैं। ऐसा लगता है कि सब कुछ अपना भोगा हुआ यथार्थ है 'जिन्दगी' शीर्षक कविता में कवयित्री ने जिन्दगी का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। 'एक गीली सुलगती। सूं-सूं करती। जलती लकड़ी सी। जिन्दगी।' ऐसा लगता है कि जिन्दगी वास्तव में कुछ पल की एक दांस्ता है जहां कुछ भी नहीं पता चलता है। जीवन मरण के बीच की दूरी का बड़ा ही सुन्दर वर्णन 'पत्ता' शीर्षक से लिखी गयी रचना में किया गया है–

पत्ता जब, सूख जाता है
डाली से नाता उसका, टूट जाता है।

इस संग्रह में कवयित्री ने कविता की गहराई को अपनी संवेदनाओं से जगाने का प्रयास किया है। बकौल कवयित्री, "आम आदमी की भीतरी आवाज की साक्षी कविता है। कोई भी सभ्यता कविता को न तो रौंद सकती है और न ही खरीद सकती है; हां सभ्यता और संस्कृति का कविता पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

इस कविता संग्रह की अनेक कविताएं ऐसी हैं जिन्हें बार-बार पढ़ने का दिल करता है क्योंकि इनमें भावनाओं के साथ-साथ इन्सान के जीवन का वास्तविक चित्रण भी है जो कहीं न कहीं एक बार मनुष्य की पीड़ा को व्यक्त करती है।

नाम पुस्तक – वक्त की खूँटी (कविता संग्रह)
कवयित्री – निर्मला सिंह
प्रकाशक – प्रांजल प्रकाशन, देहरादून
मूल्य – 120 रुपये

❑ ❑

विदेश में अपना देश

कुमार पंकज

सच कहा जाए तो मॉरीशस भारत का ही एक भाग लगता है जहाँ भारतीय संस्कृति, रहन-सहन, खान-पान यहाँ तक कि भाषा भी भारतीय ही है। आखिर लगे भी क्यों न। मॉरीशस में जो प्रवासी भारतीय गये हैं वो मॉरीशस को भारत का लघु रूप मानते हैं। राकेश पाण्डेय के संपादन में प्रकाशित पुस्तक "मॉरीशस : भारतीय संस्कृति का अप्रतिम तीर्थ" में मॉरीशस की अद्‌भुत छटा का रूप दिखाई देता है। पुस्तक में तीस लेखकों के लेख संकलित है जिन्होंने अपने नजरिए से मॉरीशस को देखने का प्रयास किया है। मॉरीशस में भारतीय उच्चायुक्त विजय कुमार ने भारत मॉरीशस संबंधों पर चर्चा करते हुए लिखा है कि "भारत और मॉरीशस के बीच जो सबसे बड़ी समानता है, वह है दोनों देशों का धर्मनिरपेक्ष प्रणाली पर शत शत विश्वास। भारत और मॉरीशस के अलावा शायद ही कोई देश हो जहाँ इतनी सांस्कृतिक एवं धार्मिक भिन्नता के बावजूद जनता का पारस्परिक संबंध बेहतर है।"

पुस्तक में भारत और मॉरीशस के बीच संबंधों का इतना सुन्दर वर्णन है कि एक के बाद एक लेख अपनी पैनी दृष्टि के लिए जाने जायेगें। इस पुस्तक में उन भारतीयों के लेख हैं जिन्होंने मॉरीशस यात्रा के दौरान वहाँ पर भारतीय सामाजिक स्थितियों को देखा है। इसके अलावा मॉरीशस के साहित्यकारों का लेख भी काफी

मार्मिक है जो मन में कहीं न कहीं से अपने को भारत के नजदीक पाते हैं। आज आधुनिक मॉरीशस में भारतीय संस्कृति व परंपराए पूर्णतया जीवित हैं क्योंकि उन्हें संजोया और संवारा है, वहाँ के आम आदमियों ने। यही कारण है कि वहाँ संस्कृति और परंपरा एक सूत्र में पिरोयी हुई सी मिलती है। मॉरीशस के सुप्रसिद्ध साहित्यकार अभिमन्यु अनत ने अपने लेख 'मॉरीशस का भारतीय अप्रवासी स्वर' में लिखा है, "आज इतने वर्षों बाद मॉरीशस अगर फल-फूलकर धरती का स्वर्ग माना जाता है तो पुरखों के उन बलिदानों और यातनाओं को झेलने की महाशक्ति के कारण ही। आज अपनी आज़ादी के बाद मॉरीशस में भारतीय आत्माओं की छाप यहाँ के चप्पे-चप्पे पर देखने को मिलती है। चाहे वे गन्ने के हरे भरे खेत ही क्यों न हों। आर्थिक और राजनैतिक शक्ति के साथ-साथ वहाँ के सामाजिक स्वरूप तथा सांस्कृतिक भव्यता ये सभी बार-बार हमें पूर्वजों की याद ही तो दिलाती हैं।" मॉरीशस की धर्मिक आस्था का वर्णन करते हुए रामायण सेन्टर मॉरीशस के अध्यक्ष राजेन्द्र अरूण लिखते हैं, "मॉरीशस इन सभी देशों में अपनी अलग और अनोखी पहचान रखता है। यहाँ का पूरा वातावरण राममय दिखायी देता है। इसे समस्त संसार में रामायण का देश माना जाता है।"

मॉरीशस की खूबियों का वर्णन जिस प्रकार से किया गया है उसे पढ़कर हर पाठक यही सोचेगा कि काश एक बार भारतीय संस्कृति के दर्शन दूसरे देश में जाकर जरूर कर लें। डॉ. रत्नाकर पाण्डेय ने अपने लेख 'एक लहू की भाषा है मॉरीशस' में लिखा है, "मारीशस में जो अपनत्व मिला, उससे लगता है कि हम मॉरीशस के है, मॉरीशस हमारा है। वहाँ पर हमें जो प्यार मिला वह बनावटी नहीं, भावनात्मक है। लेकिन वहाँ के साहित्यकार भाषा और संस्कृति के सवाल पर एक संकट भी मानते हैं। रामदेव धुरंधर अपने लेख में लिखते हैं कि "भोजपुरी और हिंदी यहाँ भारतीय मन के लोगों के लिए आत्म सम्मान की ही भाषा रही थी, लेकिन प्रत्यक्षतः बोलने से एक हिचकिचाहट बनती थी कि फ्रांसीसी और दष्शी क्या कहेंगे। इस हिचकिचाहट के कारण भोजपुरी लोगों से इस हद तक टूटी कि युवा पीढ़ी में इसके प्रति लगाव न के बराबर है।"

इसके अलावा इस पुस्तक में धनिलाल शिव का लेख मॉरीशस भारत संबंध हिन्दी महासागर की तरह गहरा है, अणामिल माताबदल का लेख मॉरीशस में हिन्दी तथा हिन्दी प्रचारिणी सभा, डॉ. कमल किशोर गोयनका का लेख दुर्गा—भारतीय

प्रवासियों का प्रथम जागरण, डॉ. हेमराज सुन्दर का लेख मॉरीशस का महात्मा गांधी संस्थान, डॉ. शोभनाथ यादव का लेख मॉरीशस यात्रा नये सृजन और एहसासों की यात्रा, धनराज शंभु का लेख मॉरीशस में हिन्दी का महत्व एवं पठन का विकास, बटुक चतुर्वेदी का लेख हिन्द महासागर का अनमोल रत्न : मॉरीशस, डॉ. सत्यू प्रसाद मिश्र का लेख मॉरीशस जहाँ जन-जन में भारत बसता है, डॉ. महेन्द्र कार्तिकेय का लेख मॉरीशस अपनत्व का विस्तार, सूर्यराज विज का लेख मॉरीशस यादों के झरोखों से, इन्द्रदेव भोला का लेख साहित्यिक सेतु आदान-प्रदान का, रमेश माहेश्वरी का लेख ज्वालामुखी से 'मधुमुखी' तक, डॉ. प्रतिभा मुदालियार का लेख गिरमिटियों के देश में, संतोष श्रीवास्तव का लेख धुएं में भी मिठास है जहाँ, डॉ. प्रज्ञा शुक्ल का लेख मॉरीशस जिसने मेरा मन मोह लिया, राजेन्द्र जोशी का लेख मॉरीशस पराया देशः अपना परिवेश, डॉ. धनंजय सिंह का लेख मुड़िया पहाड़ का बुलावा, डॉ. अनिल कुमार सिंह का लेख मॉरीशस की सभ्यता और संस्कृति, राकेश दुबे का लेख विदेश में अपना देश, महेन्द्र शर्मा का लेख कवि की साकार कल्पना मॉरीशस, सतीश सागर का लेख मॉरीशस तुमको शत शत नमन, कमलकांत बुधकर का लेख मॉरीशस एक सतरंगी धरती, सादिका असलम नवाब का लेख कुछ बाते, कुछ यादें, सम्मिलित हैं। पुस्तक के संपादक राकेश पाण्डेय ने संकलन के आखिरी लेख मॉरीशस की आत्मा भारत है में लिखा है, मॉरीशसवासी हिन्दी व भोजपुरी को भी नहीं भूले। आज वहाँ से हिन्दी की हुंकार की गूंज दूर तक सुनी जा सकती है। हिन्दी के लिए जो कीर्तिमान स्थापित करने की अपेक्षा भारत से की जाती है, वह मॉरीशस से हो रही हैं।

कुल मिलाकर यह पुस्तक मॉरीशस को जानने और समझने के लिए पर्याप्त कही जा सकती है। संपादक ने पुस्तक के अंत में रामायण सेंटर एक्ट 2001 और विश्व हिन्दी सचिवालय एक्ट 2002 को विशेष तौर पर देकर पाठकों को अतिरिक्त जानकारी देने का सराहनीय प्रयास किया है।

नाम पुस्तक – मॉरीशसः भारतीय संस्कृति का अप्रतिम तीर्थ
संपादक – राकेश पाण्डेय
प्रकाशक – राजपथ प्रकाशन, गीता कालोनी, दिल्ली
मूल्य – 250 रुपये

❑ ❑

पर्यावरण और सौंदर्य को समझने की जरूरत

कुमार पंकज

पर्यावरण को लेकर आज सजग होने की जरूरत है। अगर पर्यावरण स्वच्छ नहीं है तो मनुष्य के स्वास्थ्य पर भी उसका बुरा असर पड़ता है। ज्ञानेन्द्र कुमार द्वारा लिखित पुस्तक 'नगर पर्यावरण और सौन्दर्य' पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं को उजागर करता है। पर्यावरण के क्षेत्र में वृक्षों की क्या उपयोगिता है, लेखक ने वृक्षारोपण का इतिहास और अन्य लेखों में बखूबी समझाने का प्रयास किया है। लेखक के शब्दों में, "देश के संतुलित विकास के लिए स्वस्थ पर्यावरण का विकास करना जरूरी है।" इसमें कोई संदेह नहीं है कि रंग-बिरंगे पेड़ और फूल पर्यावरण को सुन्दर बनाने में बहुत बड़ी भूमिका निभाते हैं। वनस्पति से ढकी भूमि सदा सुन्दर लगती है और सभी युगों में लोग बाग इसे पसंद करते हैं। इसलिए वनस्पति विहिन जमीनों पर ऐसे वृक्ष लगाना जो सजावटी भी हों एक साथ दो प्रयोजन सिद्ध करेंगे।

आज के दौर में पर्यावरण की उपयोगिता इसलिए सार्थक प्रतीत होती है कि स्वच्छ वातावरण मनुष्य की चेतना का विकास करता है। पर्यावरण को लेकर अतीत में लोग कितना सजग रहे हैं। इस बात का भी बखूबी वर्णन इस पुस्तक में

मिलता है। पुस्तक में पर्यावरण की सजगता के साथ-साथ पर्यावरण को बचाने के लिए किस प्रकार के वृक्ष लगाये जाने चाहिए, कौन सी प्रजाति का वृक्ष अच्छा होता है। घर के आसपास किस प्रकार का वृक्ष लगाया जाना चाहिए आदि का वर्णन बखूबी मिलता है। आज मनुष्य को पर्यावरण का सजग प्रहरी बनने की जरूरत है। मार्गों पर सौन्दर्यीकरण करते समय एक पक्ष ऐसा प्रमुख हो गया है जिस पर ध्यान दिया जाना चाहिए। आजकल वाहनों की भरमार से वातावरण इतना प्रदूषित हो गया है और निरंतर इसमें वृद्धि होती जा रही है कि प्रकृतिविद् अथवा सामान्य जन सभी की चिंताओं का अंत नहीं है। ऐसा होना स्वाभाविक भी है क्योंकि इसका सीधा प्रभाव राष्ट्रीय स्वास्थ्य और जनजीवन पर पड़ रहा है। यदि सौन्दर्यीकरण की योजनाओं में इसे भी सम्मिलित कर लिया जाए तो एक पंथ दो काज वाली लोकोक्ति चरितार्थ हो जाती है।

कुल मिलाकर यह पुस्तक आम आदमी को पर्यावरण के प्रति सजग करने के लिए है। पुस्तक की लोकप्रियता का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि वर्तमान में प्रदूषण की मार झेल रहे लोगों को यह पुस्तक सजग ही नहीं करती बल्कि मार्गदर्शन भी देती है किस प्रकार पर्यावरण को बचाया जाए। लेखक ने इस पुस्तक में सुन्दर चित्रों के जरिए समझाने का प्रयास किया है। पुस्तक पठनीय ही नहीं संग्रहणीय भी है।

नाम पुस्तक – नगर पर्यावरण और सौन्दर्य
लेखक – ज्ञानेन्द्र कुमार
प्रकाशक – प्रांजल प्रकाशन, देहरादून
मूल्य – 80 रुपये

❑ ❑

रचनाकार

डॉ. रामस्वरूप पल्लव
ए-2428, वीरभद्र टाउनशिप,
हृषिकेश देहरादून-249 202
(उत्तरांचल)

प्रो. पी. आदेश्वर राव
फ्लैट 301ए मयूरी बीच अर्पाटमेन्ट्स
डच हाउस ले आउट,
विशाखापट्टणम्-530 023
(आन्ध्र प्रदेश)

अशोक जेरथ

राधावल्लभ त्रिपाठी
Presidents Park
Soi-24, Sukhumvit,
Bangkok-10110

सुभाष सेतिया
1370, सैक्टर-12
आर. के. पुरम
नई दिल्ली-110 022

महात्तम सिंह
सूरीनाम

डॉ. दामोदर खड़से
डी/डी-8, वृंदावन कॉम्प्लेक्स,
(शांतिवन के पास)
कोथरूड, पुणे-411 029

डॉ. अनिल राय
86, अमित अपार्टमेंट्स
सैक्टर-13, रोहिणी,
दिल्ली-110 085

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल
प्रकाशन एवं शोध संस्थान
16 साहित्य विहार
बिजनौर
(उत्तर प्रदेश)

अभिमन्यु अनत
मॉरिशस

उत्तम कांबले
'चार्वाकाशय', पाटणी इस्टेट,
सर्व्हे नं. 207/5/1, हरिकृपा
सोसायटीज,
टी.बी. सॅनेटरियम रोड, म्हसरूल,
नासिक-422 004 (महाराष्ट्र)

हरजेन्द्र चौधरी
विजिटिंग प्रोफेसर, वार्सा युनिवर्सिटी
जी-601, 'सोक्रेटिस'
यूएल समवांकोआ-9
वार्सा-02-678
(पोलैण्ड)

राकेश पाण्डेय
5/23, गीता कॉलोनी
दिल्ली-110 092

सिद्धेश्वर
अवसर प्रकाशन
पोस्ट बाक्स नं. 205 करबिगहिया
पटना-800 001 (बिहार)

अतुल कुमार मिश्र 'अतुल'
विभागाध्यक्ष, हिन्दी विद्या निकेतन,
बिरला पब्लिक स्कूल,
पिलानी
(राजस्थान)

जे.पी. आर्य
भारतीय दूतावास
पारामारिबो

डॉ. ओमप्रकाश सिंह
शांति निकेतन, साकेत नगर
लालगंज, रायबरेली
(उत्तर प्रदेश)

डॉ. गोविन्द व्यास
बी-52 गुलमोहर पार्क
नई दिल्ली-110 049

अमरनाथ 'अमर'
61-एफ, सैक्टर-4
बंगला साहिब रोड
गोल मार्किट,
नई दिल्ली-110 001

अजय कुमार
1/4954 ए, गली नं.-4
बलबीर नगर एक्स., शाहदरा
दिल्ली-110 032

आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री
मुज़फरपुर
बिहार

गीतिका गोयल

डॉ. मञ्जुलता शर्मा
वेदरयिनी 49, कैलाश विहार
आगरा-7

कुमार पंकज
428, तेलीवाड़ा, शाहदरा
दिल्ली-110 032